दिसम्बर 2020

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

यह राग, कषाय का बीज है। उसमें से बड़ा वृक्ष उत्पन्न होता है।
द्वेष, कषाय की शुरुआत है और राग अर्थात् बीज डाला,
तभी से फिर उसका परिणाम आएगा, कषाय।
राग में से द्वेष और द्वेष में से राग।

Parayan on Aptavani-14
(Part - 2)

Watch the Live Telecast On

अरिहंत

TV Channel...

For more details of program, please refer to page 34

Calendar 2021

Just as every year, purchase a calendar in the year 2021 with Dada's golden aphorisms and give it to your family and friends too.

You can purchase this calendar for just Rs 40

At the book store at Adalaj Trimandir, all other Trimandir, and on
store.dadabhagwan.org
(extra delivery charges apply)

This calendar has been released at the hands of Pujyashree.

Note: The 2021 calendars are only available in Gujarati, the soft copy of the Hindi calendar has been shared on **Akonnect**.

वर्ष : 16 अंक : 2
अखंड क्रमांक : 182
दिसम्बर 2020
पृष्ठ - 32

Editor : Dimple Mehta
© 2020
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधरसिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
15 साल
भारत : 1500 रुपये
यू.एस.ए. : 150 डॉलर
यू.के. : 120 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 12 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

कषायों की 'मिठास' के सामने जागृति

संपादकीय

मोक्ष में बाधक क्या है? कषाय। राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया व लोभ, ये सब दुःख देने वाली चीज़ें हैं, इन्हीं को कषाय कहते हैं। द्वेष कषाय से दुःख होता है, वह अनुभव में आया है लेकिन बहुत बार प्रश्न यह होता है कि राग से दुःख नहीं होता तो फिर राग को कषाय क्यों कहा? तब दादाश्री कहते हैं, 'राग से दुःख नहीं होता लेकिन राग, वह कषाय का बीज है।' राग से बीज डलता है, फिर जब उसका परिणाम आएगा तब द्वेष उत्पन्न होगा और उसी से संसार बढ़ता जाएगा।

जीवमात्र को अनुकूल, राग वाले या मीठे संयोग अच्छे लगते हैं। ज़रा भी प्रतिकूलता या कड़वाहट आ जाए तो वे संयोग अच्छे नहीं लगते। उन संयोगों के प्रति द्वेष होता है और उनसे दूर होने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा नहीं है कि सिर्फ प्रतिकूलता में ही कषाय होते हैं, अनुकूलता में भी कषाय होते हैं। प्रतिकूलता के कषाय हैं मान और क्रोध, जो कि द्वेष में आते हैं। अनुकूलता में उत्पन्न होने वाले कषाय ठंडक वाले होते हैं, मीठे होते हैं। वे राग कषाय, लोभ और कपट वाले हैं। उनकी ग्रंथि जल्दी नहीं टूटती। वे कषाय रस *गारवता* (सांसारिक सुख की ठंडक में पड़े रहना) में डूबो देते हैं और अनंत जन्मों तक भटकाते हैं।

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) की कृपा से प्राप्त हुए अक्रम ज्ञान के बाद महात्माओं में बिल्कुल भी राग-द्वेष नहीं रहते। अब, जो दिखाई देते हैं, वे डिस्चार्ज राग-द्वेष हैं। अब महात्माओं के लिए यही एकमात्र पुरुषार्थ होना चाहिए कि उन डिस्चार्ज राग-द्वेष कषायों के सामने ज्ञान जागृति रखें।

दादाश्री हमेशा कहते थे कि, 'ज्ञान से पहले हम अनुकूल, मीठे संयोगों से हमेशा सावधान रहते थे।' क्योंकि वह मिठास झोंका खिला देती है, जागृति को डिम कर देती है जबकि कड़वाहट जागृति को बढ़ा देती है। जब ऐसा समझ में आएगा कि कड़वा फल मीठा है और मीठा फल कड़वा है तब मोक्ष में जा पाएगा!

इस मिठास का आधार क्या है? अनादि से संसार की अज्ञान मान्यताओं के अध्यास के कारण मिठास महसूस होती है। महात्माओं को शुद्धात्मा की प्राप्ति के बाद अब जो डिस्चार्ज महसूस होती है, उसके सामने पारिणामिक दृष्टि विकसित करके यानी कि जहाँ मिठास महसूस होती है वहीं से मार पड़ेगी और साथ ही वह मिठास शुद्धात्मा को महसूस नहीं होती, अहंकार को होती है, ऐसी ज्ञान जागृति रखकर हमेशा के लिए 'मिठास' का आधार टूटे इस तरह का पुरुषार्थ करके मोक्षमार्ग में मिठास के सामने जागृति बढ़े, यही अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

कषायों की 'मिठास' के सामने जागृति

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

राग, वह कषाय का बीज है

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष, वे कषाय भाव हैं या कुछ और हैं?

दादाश्री : वे कषाय के ही भाव हैं। वह और तत्त्व नहीं है। क्रोध और मान, वे द्वेष हैं और माया व लोभ, वे राग हैं। ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये आत्मा को पीड़ित करें, वे सभी कषाय हैं।

प्रश्नकर्ता : राग से पीड़ा नहीं होती फिर भी राग को कषाय क्यों कहा है?

दादाश्री : राग से पीड़ा नहीं होती परंतु राग, वह कषाय का बीज है। उसमें से बड़ा वृक्ष उत्पन्न होता है!

द्वेष वह कषाय की शुरुआत है और राग वह बीज डाला, तभी से फिर उसका परिणाम आएगा। उसका परिणाम क्या आएगा? कषाय। यानी कि जब परिणाम आएगा तब द्वेष उत्पन्न होगा। अभी तो राग है इसलिए मीठा लगता है।

ये जो निरंतर *गारवरस* (संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहने की इच्छा) में रखते हैं, खूब ठंडक लगती है, खूब मज़ा आता है, ये ही कषाय हैं, जो भटकाते हैं।

राग कषाय झोंका खिला देता है

प्रश्नकर्ता : अनुकूल संयोगों में कषाय भाव नहीं आता और प्रतिकूल संयोगों में कषाय भाव बहुत आ जाते हैं तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : ऐसा है न... सिर्फ प्रतिकूलता में ही कषाय होते हैं, ऐसा नहीं है। अनुकूलता में भी बहुत कषाय होते हैं। परंतु अनुकूलता के कषाय ठंडे होते हैं। उन्हें राग कषाय कहते हैं। उसमें लोभ और कपट दोनों होते हैं। उसमें वास्तव में ऐसी ठंडक लगती है कि दिनोंदिन गांठ बढ़ती ही जाती है। अनुकूल सुखदायी लगता है। परंतु सुखदायी ही बहुत विषम है।

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में तो पता ही नहीं चलता कि यह कषाय भाव है।

दादाश्री : उनमें कषाय का पता नहीं चलता, परंतु वे ही कषाय मार डालते हैं। प्रतिकूलता के कषाय तो भोले होते हैं बेचारे! उसका जगत् को तुरंत ही पता चल जाता है। जबकि अनुकूलता के कषाय, लोभ और कपट तो फलफूलकर बड़े होते हैं! प्रतिकूलता के कषाय, मान और क्रोध हैं। वे दोनों द्वेष में आते हैं। अनुकूलता के कषाय अनंत जन्मों तक भटका देते हैं। आपको समझ में आ गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : इसलिए दोनों गलत है - अनुकूल और प्रतिकूल।

द्वेष प्रतिकूल कषाय कहलाता है और यह

राग वाला अनुकूल कषाय कहलाता है। अनुकूल को जब छोड़ना हो तब छोड़ा जा सकता है, परंतु अनुकूलता में बहुत जागृति रखनी पड़ती है। प्रतिकूल कड़वा लगता है, और क्योंकि कड़वा लगता है इसलिए तुरंत ही जागृति आ जाती है। अनुकूल मीठा लगता है।

हमें जब 'स्वरूप ज्ञान' नहीं हुआ था तब अनुकूल में हम बहुत सावधान रहते थे। प्रतिकूल में तो हमें पता चल जाएगा। अनुकूल से ही सब भटक गए हैं। किसी के घर में साँप घुस गया और उसने उसे देख लिया हो तो उसे हमें यह नहीं कहना पड़ता कि, 'साँप घुस गया है, जगते रहना!' यानी कि यह जगत् जाग्रत रहने जैसा है। ये जो भूलें करवाती है न, जो झोंका खिला देती है, वह सब अनुकूलता ही करवाती है।

ज्ञान का मापदंड, प्रतिकूलता में

प्रश्नकर्ता : हर किसी को अनुकूल संयोग ही चाहिए, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूल अर्थात् सुख, जिसमें *शाता* (सुख-परिणाम) लगे वह अनुकूल, *अशाता* (दु:ख-परिणाम) लगे वह प्रतिकूल। आत्मा का स्वभाव आनंद वाला इसलिए उसे प्रतिकूलता चाहिए ही नहीं न! छोटे से छोटा जीव हो, उसे भी यदि अनुकूल नहीं आए तो खिसक जाता है!

यानी अंतिम बात यह समझ लेनी है कि प्रतिकूल और अनुकूल को एक कर दो। इस चीज़ में कुछ तथ्य नहीं है। रुपये के सिक्के में आगे रानी होती है और पीछे लिखा हुआ होता है, उसके जैसा है। उसी तरह इसमें कुछ है ही नहीं। अनुकूल और प्रतिकूल सब कल्पनाएँ ही हैं।

आप शुद्धात्मा बन गए इसलिए फिर अनुकूल भी नहीं है और प्रतिकूल भी नहीं है। यह तो जब तक आरोपित भाव है, तभी तक संसार है और तभी तक अनुकूल और प्रतिकूल का झंझट है। अब तो जगत् को जो प्रतिकूल लगता है, वह हमें अनुकूल लगता है। प्रतिकूलता आए तभी हमें पता चलता है कि पारा चढ़ा है या उतरा है।

हम घर पर आएँ और आते ही यदि कुछ *उपाधि* (परेशानी) खड़ी हो गई तो हम जान जाते हैं कि हमें अभी तक ऊँचे-नीचे परिणाम बरत रहे हैं। वर्ना भीतर ठंडक हो गई है, ऐसा भी पता चलता है। उसके लिए थर्मामीटर चाहिए न? उसका थर्मामीटर बाज़ार में नहीं मिलता है, अपने घर पर एकाध हो तो अच्छा। अभी यह कलियुग है, दूषमकाल है, इसलिए घर में दो-चार 'थर्मामीटर' होते ही हैं, एक नहीं होता! नहीं तो हमें कौन नापेगा? किसी को किराए पर रखें, तो भी नहीं करेगा! किराये वाला अपना अपमान करेगा, लेकिन उसका मुँह फूला हुआ नहीं होगा, इसलिए हम समझ जाएँगे कि यह बनावटी है! और यह तो 'एक्ज़ेक्ट'! मुँह-वुँह फूला हुआ, आँखें लाल, पैसे खर्च करने पर भी ऐसा नहीं हो सकता जबकि यह तो हमें मुफ्त में मिलता है!

यह संसार आँखों से दिखने में सुंदर लगे ऐसा है। वह छूटे किस तरह? मार खाए और चोट लगे, फिर भी वापस भूल जाता है। ये लोग कहते हैं न, कि बैराग नहीं रहता, लेकिन वह रहेगा किस तरह?

वास्तव में संयोगों और शुद्धात्मा के सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। फिर संयोग भी दो प्रकार के हैं - प्रतिकूल और अनुकूल। उनमें, अनुकूल में कोई परेशानी नहीं आती, प्रतिकूल ही परेशान करते हैं। उतने ही संयोगों को हमें संभाल लेना

है। और फिर संयोग, वियोगी स्वभाव के होते हैं। इसलिए उसका समय हो जाएगा, तब चलता बनेगा। हम उसे 'बैठ-बैठ' कहें, फिर भी खड़ा नहीं रहेगा!

खराब संयोग अधिक नहीं रहते। लोग दु:खी क्यों है? क्योंकि खराब संयोगों को याद कर-करके दु:खी होते हैं। वह चला गया, अब किस लिए रोना-धोना मचाया है? जले उस समय रोए तो बात अलग है। पर अब तो तेरे ठीक होने की तैयारी हुई है, फिर भी शोर मचाता है कि देखो, 'मैं जल गया, मैं जल गया!' करता रहता है।

आपके भी अब सिर्फ संयोग ही बचे हैं। मीठे संयोगों का आपको उपयोग करना नहीं आता। मीठे संयोगों का आप वेदन करते हो, इसलिए कड़वों का भी वेदन करना पड़ता है। परंतु यदि मीठे को 'जानो', तो कड़वे में भी 'जानपना' रहेगा! लेकिन आपकी अभी पहले की आदतें जाती नहीं इसलिए वेदन करने जाते हो। आत्मा वेदन करता ही नहीं, आत्मा जानता ही रहता है। जो वेदन करता है वह भ्राँत आत्मा है, प्रतिष्ठित आत्मा है। उसे भी हमें जानना है कि 'ओहोहो! यह प्रतिष्ठित आत्मा जलेबी में तन्मयाकार हो गया है।'

प्रतिकूलता में आत्मजागृति

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में यह सब ठंडा पड़ जाता है और प्रतिकूलता में जागृति अधिक रहती है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूलता में तो ऐसा है न, उसे मीठा लगता है न! ठंडी हवा आ रही हो तो एक घंटा बीत जाता है और यदि बहुत गर्मी हो तो एक घंटा निकालना कितना मुश्किल लगता है! जबकि ठंडक में एक घंटा आसानी से बीत जाता है। उसी तरह खाना यदि अच्छा हो तो जल्दी से खा लेते हैं और सख्त भूख लगी हो लेकिन खाना इतना अच्छा नहीं हो तो फिर जबरन खाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिकूलता में जागृति ज़्यादा क्यों रहती है?

दादाश्री : प्रतिकूलता आत्मा का विटामिन है और अनुकूलता देह का विटामिन है। अनुकूल संयोगों से शरीर अच्छा रहता है। प्रतिकूल संयोगों में आत्मा अच्छा रहता है। ये सभी संयोग फायदेमंद हैं। यदि समझना हो तो सभी संयोग फायदेमंद हैं।

अनुकूल और प्रतिकूल सभी कुछ बाह्य भाग का ही है। बाहर का जो भाग है न, वही बर्तता है, आत्मा नहीं बर्तता। जब प्रतिकूलता हो तब बाह्य भाग एब्सेन्ट हो जाता है, तब आत्मा हाज़िर हो जाता है। अनुकूलता में बाह्य भाग प्रेज़ेन्ट रहता ही है। इसलिए हमें यदि आत्मा को प्रेज़ेन्ट रखना हो तो उसके लिए प्रतिकूलता अच्छी है और देह को प्रेज़ेन्ट रखना हो तो अनुकूलता अच्छी है।

हमें यदि आत्मा होना हो तो प्रतिकूलता लाभदायक है और आत्मा नहीं होना हो तो अनुकूलता लाभदायक है। जागृति के मार्ग पर चले तो प्रतिकूलता फायदेमंद है और अभानता के मार्ग पर अनुकूलता फायदेमंद है।

प्रश्नकर्ता : यदि अनुकूलता में भी जागृति रहे तो अधिक फायदा है न?

दादाश्री : पूरी तरह से नहीं रह सकती। इसलिए हम तो, यदि नहीं हो फिर भी प्रतिकूल कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल और प्रतिकूल तो मान्यता पर आधारित हैं न? या यों स्वाभाविक ही हैं?

दादाश्री : है एक्ज़ेक्ट। लेकिन जब तक मन है तब तक रहेंगी ही न! जब तक मन का आधार है तब तक रहेंगी ही।

प्रश्नकर्ता : इस देह को भी सब अनुकूल और प्रतिकूल लगता ही है न?

दादाश्री : वास्तव में देह को नहीं लगता। मन का है।

प्रश्नकर्ता : गर्मी लगने पर एकदम बेचैनी हो जाए तो यह गर्मी देह को लगती है या मन को?

दादाश्री : मन को। देह को कुछ नहीं लगता। बुद्धि कहे तो मन शुरू कर देता है, बुद्धि नहीं कहे तो कोई हर्ज नहीं। बुद्धि अर्थात् संसार जागृति।

प्रश्नकर्ता : प्रतिकूलता भी अनुकूलता ही है। अंदर ऐसी उल्टी सेटिंग कर सकता है न, बुद्धि से?

दादाश्री : हाँ, लेकिन जिसे मोक्ष में जाना हो, वह ऐसी सेटिंग करता है कि यह तो अनुकूल ही है। वास्तविक लाभ इसी में है, प्रतिकूलता में। हम सर्दी में भी ओढ़ा हुआ निकाल देते हैं। उससे जागृति रहती है।

प्रश्नकर्ता : उस समय कैसी जागृति में रहते हैं?

दादाश्री : जागृति जागृति में रहती है, नहीं तो जागृति सो जाती है।

प्रश्नकर्ता : ठंड लगने से नींद नहीं आती इसलिए फिर जाग जाते हैं। फिर जागृति में रहते हैं, ऐसा है?

दादाश्री : वर्ना नींद आ जाती है और उस समय कोई जगाने वाला नहीं होता है न!

प्रश्नकर्ता : तब अंदर कौन सी जागृति में रहे?

दादाश्री : बेहोशी कम हो जाती है न! जागने पर, तू जो कुछ भी जानता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ही रहता है न!

जहाँ मीठा लगे, वहाँ पड़े मार

जागृति किसे कहते हैं कि सोए नहीं, उसे जागृति कहते हैं। जागृति हो तो चोर नहीं घुस पाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो खुद के ये सारे दोष भी दिखाई देने चाहिए न?

दादाश्री : दिखाई देते हैं न!

प्रश्नकर्ता : अहंकार भी दिखाई देना चाहिए न?

दादाश्री : वह भी दिखाई देता है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसके गिर जाने का कारण क्या होता है?

दादाश्री : वह अहंकार ही खुराक ले जाता है यह सारी। यह जो गर्व रस करवाता है न, वह अहंकार ही यह सब करवाता है हम से कि 'यह तो बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, लोगों को अच्छा लगा।'

प्रश्नकर्ता : अहंकार का यह जो रस अधिक चख लेता है उसके कारण वापस ऐसे गिरना पड़ता है न?

दादाश्री : हाँ और क्या! इसमें तो बहुत मिठास आती है। जैसे कि लोग कहते हैं न, 'यह मैंने किया', तब करने का गर्व उत्पन्न होता है। जब तक कमाई करता है तब तक गर्व रस उत्पन्न

होता है और नुकसान होता है तब क्या कहता है? 'भगवान ने किया।' अरे पगले, कमाया तब 'मैंने किया' कह रहा था। जब गर्व रस उत्पन्न होता है, उस घड़ी मिठास आती है। जब मीठा लगे न, तब जान लेना कि मार पड़ेगी।

मीठे रस से बंधते हैं कर्म

यानी वास्तव में हम कर्ता नहीं हैं। कर्ता दूसरी ही चीज़ है। हम आरोप करते हैं, आरोपित भाव करते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ यह।' उसका गर्वरस चखने को मिलता है। ऐसा गर्वरस तो बहुत मीठा लगता है वापस और उसी से कर्म बंधते हैं। गर्वरस चखा, आरोपित भाव किया कि कर्म बंधा।

अब जैसा है वैसा जान ले कि भाई, यह कर्ता हम नहीं हैं और यह तो 'व्यवस्थित' कर रहा है, तभी से हम मुक्त हो जाते हैं। ऐसा विज्ञान होना चाहिए अपने पास। फिर राग-द्वेष होंगे ही नहीं न! विज्ञान से ऐसा जान जाते हैं कि हम अब 'यह' हैं ही नहीं। मैं यह जो कह रहा हूँ, वह मेरा विज्ञान नहीं है। यह वीतराग विज्ञान हैं! चौबीस तीर्थंकरों का विज्ञान है! और वीतराग विज्ञान के बिना मनुष्य बात को प्राप्त कैसे कर सकेगा?

प्रश्नकर्ता : आपकी 'थ्योरी' के अनुसार तो 'व्यवस्थित' चला रहा है, फिर भी गर्वरस होता ही रहता है न, उसमें?

दादाश्री : नहीं। गर्व होगा ही नहीं न! गर्व तो, 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा 'डिसाइड' होने तक ही गर्व है। जब तक 'रोंग बिलीफ' है तब तक गर्व है और 'रोंग बिलीफ' गई तो गर्व रहता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : 'रोंग बिलीफ' तो जाती नहीं है न, जल्दी?

दादाश्री : 'रोंग बिलीफ' चली ही जाती है न! हम वह निकाल देते हैं। कितने ही लोगों की 'रोंग बिलीफ' चली गई है न! और वह 'रोंग बिलीफ' एक नहीं है। मैं इसका भाई हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, ऐसी कितनी ही सारी 'रोंग बिलीफें' बैठी हैं!

प्रश्नकर्ता : जब तक आप स्वरूप का भान नहीं करवा देते तब तक 'रोंग बिलीफ' जाती नहीं है न?

दादाश्री : नहीं जाती। उसका भान होना चाहिए। 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ, चंदूभाई तो सिर्फ ड्रामेटिक है' ऐसा भान होना चाहिए। फिर अंदर संयम बरतता रहेगा और अंदर का, आंतरिक संयम बरतने लगे तो फिर गर्वरस नहीं चखता। संयम से इतना सुख उपजता है कि उसे गर्वरस चखने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। यह तो उसे सुख नहीं है, इसीलिए गर्वरस चखता है। किसी भी प्रकार का सुख नहीं है तब, ऐसा यह सुख तो है ही न!

सांसारिक सुख तो रोंग बिलीफ से हैं। यह ज्ञान यदि होता न, तो भी कुछ चलता, लेकिन यह तो रोंग बिलीफ से आगे बढ़ता ही नहीं! विवरणपूर्वक उन सुखों को देखे न तो भी वे कल्पित सुख समझ में आ जाएँ, लेकिन यह तो जब तक रोंग बिलीफ खत्म नहीं हो जाती तब तक उसी में सुख महसूस होता है।

अहंकार का रस खींच लो

मूल वस्तु प्राप्त कर ली, फिर अब अहंकार का रस खींच लेना है। राह चलते कोई कहे, 'अरे, आप कमअक्ल हैं, सीधे चलिए।' उस समय अहंकार खड़ा होता है, वह अहंकार सहज ही टूट जाता है। गुस्सा आता है। किन्तु उसमें गुस्सा

करने को क्या रहा? हमें अब गुस्सा करने जैसा रहता ही नहीं है। अहंकार का जो रस है, उसे खींच लेना है।

अपमान किसी को पसंद नहीं आता पर हम कहते हैं कि वह तो बहुत हेल्पिंग है। मान-अपमान तो अहंकार का कड़वा-मीठा रस है। अपमान करता है, वह तो आपका कड़वा रस खींचने आया है। 'आप कमअक्ल हैं', ऐसा कहा, मतलब, सामने वाले ने वह रस खींच लिया। जितना रस खींच लिया उतना अहंकार टूटा और वह भी बिना मेहनत के दूसरे ने खींच दिया। अहंकार तो रस वाला है। जब अनजाने में कोई निकाले तब जलन होती है इसलिए जान-बूझकर सहज रूप से अहंकार को कटने देना। सामने वाला सहज रूप से खींच लेता हो, उससे बढ़कर और क्या हो सकता है? सामने वाले ने कितनी बड़ी हेल्प की।

जैसे-तैसे करके सारा रस पिघला दें तो *निकाल* हो जाए। अहंकार तो काम का है, वर्ना संसार व्यवहार कैसे चलेगा? अहंकार को केवल नीरस बना देना है। हमें जिसे धोना था, उसे दूसरों ने धो दिया, वही हमारा मुनाफा। हम ज्ञानी पुरुष अबुध होते हैं और ज्ञानी के पास इतनी शक्ति होती है कि वे खुद ही अहंकार का रस खींच लेते हैं। जबकि आपके पास ऐसी शक्ति नहीं होती। इसलिए आपको तो कोई अपमान करके सामने से अहंकार का रस खींचने आए तो खुश होना चाहिए। आपकी कितनी मेहनत बच जाए? आपका तो काम हो जाए! हमें तो, फायदा कहाँ हुआ यही देखना है। यह तो गज़ब का मुनाफा हुआ ऐसा कहा जाएगा।

यदि आपका कड़वा-मीठा रस नीरस हो गया हो तो अहंकार का स्वभाव है कि नाटकीय तौर पर वह सारा काम कर देगा। अहंकार को खत्म नहीं करना है, उसे, नीरस करना है।

'जब अपमान का भय नहीं रहेगा तब कोई अपमान नहीं करेगा', यह नियम ही है। जब तक भय है तब तक व्यापार। भय गया कि व्यापार बंद। अपने बहीखाते में मान और अपमान का खाता रखो। जो कोई मान-अपमान देकर जाए उसे बहीखाते में जमा करते जाओ, उधार मत करना। चाहे कितना भी बड़ा या छोटा डॉज़ कोई दे जाए तो उसे बहीखाते में जमा कर लेना। तय करो कि महीने भर में सौ के बराबर अपमान जमा कर लेने हैं। जितने ज़्यादा आएँ, उतना अधिक मुनाफा। यदि सौ के बजाय सत्तर मिलें तो तीस का घाटा। फिर अगले महीने में एक सौ तीस जमा करना। जिसके खाते में तीन सौ अपमान जमा हो गए, उसे फिर अपमान का भय नहीं रहता। वह फिर पार उतर जाता है। पहली तारीख से बहीखाता शुरू कर ही देना। इतना हो पाएगा या नहीं?

कड़वे के प्रति द्वेष और मीठे के प्रति राग होना, वह अज्ञानता का स्वभाव है। यदि अज्ञान जाए तो कड़वा-मीठा नहीं रहता।

कड़वा फल मीठा है और मीठा कड़वा है, जब ऐसा समझ जाएगा, तब मोक्ष में जा सकेगा!

जो कड़वा पीए, वह नीलकंठ

प्रश्नकर्ता : दादा, कोई कड़वे शब्द कहे तो वे सहन नहीं होते, तो क्या करना चाहिए मुझे?

दादाश्री : देख इसका तुझे खुलासा करूँ। इस रास्ते के बीच काँटा पड़ा हो, और हज़ारों लोग निकलें लेकिन काँटा किसी को भी नहीं चुभता, लेकिन जब चंदूभाई जाएँ तो काँटा टेढ़ा हो, फिर भी ऐसा चुभता है कि पँजे में से आरपार

निकल जाता है! कड़वे का स्पर्श होना, वह हिसाब वाला होता है। और कड़वे का स्पर्श होता है, तब मानना चाहिए कि अपने कड़वे की रकम में से एक कम हुई। जितना कड़वा सहन करोगे, उतने आपके कड़वे कम होंगे। मीठा भी जब स्पर्श होता है, तब उतना कम होता है। लेकिन जब कड़वा स्पर्श होता है तब अच्छा नहीं लगता। इससे कम होता है, फिर भी कड़वा क्यों अच्छा नहीं लगता? उससे कहें कि फिर से कड़वा दे न, तब भी वह नहीं देगा। ऐसी तो किसी के हाथ में सत्ता ही नहीं है। सभी कुछ हिसाब वाला है, *सिलक* (जमापूँजी) के साथ में है, कोई गप्प नहीं है। मरने तक का सभी कुछ हिसाब सहित है। यह तो हिसाब के अनुसार होता है कि इनकी तरफ से 301 आएँगे, उसके पास से 25 आएँगे, इसके पास से 10 आएँगे। 'ज्ञान' यदि हाज़िर रहता हो तो कुछ भी सहन नहीं करना पड़े। यह तो सारा रिलेटिव रिलेशन है। कड़वा-मीठा सबकुछ हिसाब से मिलता है। रोज़ कड़वा देने वाला एक दिन ऐसा सुंदर दे देता है! ये सारे ऋणानुबंधी ग्राहक-व्यापारी के संबंध हैं!

हमारे पास भी कड़वे प्याले आए थे न! हमने पी लिए और खत्म भी हो गए! किसी ने जो भी कड़वा दिया, वह हमने बल्कि आशीर्वाद देकर पी लिया! इसीलिए तो हम महादेव जी बन गए हैं!

प्रश्नकर्ता : क्या कर्म खपाना इसी को कहते हैं?

दादाश्री : यही है, कि कड़वी भेंट आएँ तब स्वीकार कर लेनी चाहिए। लेकिन ऐसी कड़वी भेंट-सौगातें आएँ तब कहता है कि, 'अरे! तू मेरे साथ ऐसा क्यों कर रहा है?' ऐसा करने से कर्म नहीं खपते। नया व्यापार शुरू होता है। जिसे स्वरूप का भान है यानी कि जिसे इस दुकान का *निकाल* (निपटारा) करना है, वह हल ला देता है। जिसे स्वरूप का भान नहीं है, उसका तो व्यापार चल ही रहा है, दुकान चल रही है।

सामने वाला कड़वा दे तब वह कौन से बहीखाते का है, वैसे नहीं जान लें तब तक वह अच्छा नहीं लगता। लेकिन यदि पता चले कि, 'ओहो! यह तो इस खाते का है!' तब फिर वह अच्छा लगेगा। 'दादा' की तो रकम ही खत्म हो गई है, तब फिर कड़वा कौन दे? यह तो जब तक वह रकम *सिलक* में हो, तभी तक देने आते हैं!

जागृति उत्पन्न होती है, कड़वाहट में से

सामने वाला यदि कड़वा पिलाए और आप हँसते हुए आशीर्वाद देकर पी जाएँ तो एक ओर आपका अहंकार स्वच्छ होता है और आप उतने मुक्त होते हैं और दूसरी ओर कड़वा पिलाने वाले को रिएक्शन आता है और वह भी बदल जाता है। उसे भी अच्छा रहता है। वह भी समझ जाता है कि मैं कड़वा पिलाता हूँ, यह मेरी कमज़ोरी है और यह हँसते मुख पी जाता है, वह बहुत शक्तिमान है।

हमें यदि कड़वा पीने को कहा हो तो हम खुद थोड़े ही पीने वाले हैं? यह तो कोई सामने से जब कड़वा पिलाए तो वह कितना उपकारी है? परोसने वाली तो माँ कहलाती है। (जो दिया था वह) वापस लिए बगैर कोई चारा नहीं है। नीलकंठ बनने के लिए ज़हर तो पीना ही पड़ेगा।

'हमें' तो 'चंदूभाई' को कह देना है कि तुझे सौ बार यह कड़वा पीना पड़ेगा। बस, फिर उसकी आदत हो जाएगी। बच्चे को कड़वी दवाई

ज़बरदस्ती पिलानी पड़ती है। पर यदि वह समझ जाए कि यह हितकर है तो फिर ज़बरदस्ती पिलानी नहीं पड़ती। अपने आप पी लेता है। एक बार तय किया कि कोई, जो भी कड़वा पिलाएँ उसे पी लेना है तो फिर पिया जाएगा। मीठा तो पी सकते हैं पर कड़वा पीना आना चाहिए। कभी न कभी तो पीना ही पड़ेगा न? यह तो फिर मुनाफा है इसलिए प्रैक्टिस कर लेनी चाहिए न?

यदि सब लोगों के बीच में मान भंग हो जाए तो घाटा हुआ, ऐसा लगता है पर उसमें तो भारी मुनाफा है, यह समझ में आ जाए तो फिर घाटा नहीं लगेगा न?

'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते तो हैं तो फिर उसी पद में ही रहना है न? उसके लिए तो अहंकार धुलवाना पड़ेगा। कठोर परिश्रम करने का निश्चय करें तो धुलेगा ही।

एक भिखारी को राजा बनाया हो और गद्दी पर बैठने के बाद यदि ऐसा कहे कि 'मैं भिखारी हूँ', तो ऐसा कहना ठीक होगा क्या? 'शुद्धात्मा' का पद पाने के बाद दूसरा कुछ भी हमें नहीं होना चाहिए।

कड़वे-मीठे अहंकार के पद में से आपको निकलना है न? फिर उसमें पैर क्यों रखते हैं? तय करने के बाद दोनों ओर पैर रखना चाहिए क्या? नहीं रख सकते। रूठना कब होता है? जब किसी ने कड़वा परोस दिया तब। हम विधि करते समय बोलते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो फिर शुद्धात्मा का रक्षण करना चाहिए या और किसी का? अहंकार को खुद ही नीरस करना बहुत कठिन कार्य है। इसलिए यदि कोई नीरस कर देता हो तो बहुत अच्छा है। उससे अहंकार नाटकीय रहेगा और अंदर का बहुत सुचारू रूप से चलेगा। यदि यह इतना फायदेमंद है तो अहंकार को नीरस करने हँसते मुख ही क्यों नहीं पीएँ? अहंकार संपूर्ण नीरस हुआ तो समझो आत्मा पूर्ण हो गया। इतना तय कीजिए कि मुझे अहंकार नीरस करना है तो फिर वह नीरस होता ही रहेगा।

यह कड़वी दवाई यदि रास आ जाए तो फिर और कोई झंझट ही नहीं रहती न? फिर, जब आपको मालूम हो गया है कि इसमें हमारा ही मुनाफा है! जितना मीठा लगता है, उतना ही कड़वा भरा पड़ा है। इसलिए पहले कड़वा पचा लो, फिर मीठा सहज ही निकलेगा। उसे पचाना बहुत भारी नहीं पड़ेगा। कड़वी दवाई पच गई तो बहुत हो गया। फूल लेते समय हर कोई हँसता है पर पत्थर पड़ें तब?

जगत् जीता जा सकता है, हारकर

उन्हें यदि कोई हराने वाला मिल जाए, 'आप में अक्ल नहीं है', ऐसे दो-चार शब्द बोले न तो तुरंत ही वह जागृत हो जाता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। सभी लोग 'आइए, आइए, आइए' कहें तो फिर जागृति नहीं आती। दिन में दो-चार बार कड़वाहट मिले तो जागृति रहती है।

इस 'ज्ञान' के बाद आपको निरंतर शुद्धात्मा का ध्यान रहता है इसलिए रोज़ शाम को हमें पूछना चाहिए कि, 'चंदूभाई हो या शुद्धात्मा?' तो कहेगा कि, 'शुद्धात्मा!' तो पूरा दिन शुद्धात्मा का ध्यान रहा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम ऐसा कहेंगे तो लोग हमें पागल कहेंगे।

दादाश्री : पागल कहेंगे तो 'चंदूभाई' को पागल कहेंगे। आपको तो कोई कहेगा ही नहीं।

आपको तो पहचानते ही नहीं है न! 'चंदूभाई' को कहेंगे तो 'आप' कहना कि, 'चंदूभाई, आप होंगे तभी कह रहे होंगे और अगर आप नहीं हो फिर भी अगर कहेंगे तो उनकी जोखिमदारी। वह फिर आपकी जोखिमदारी नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : हमें कोई कुछ कहे, पागल कहे, बेअक्ल कहे, तो अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : ऐसा है न, आपको हँसना हो तो आटा नहीं फाँकना चाहिए और आटा फाँकना हो तो, हँस नहीं सकते। दोनों में से एक रखो। आपको मोक्ष में जाना है तो लोग पागल भी कहेंगे और मारेंगे भी सही, सभी कुछ करेंगे लेकिन आपको अपनी बात छोड़ देनी पड़ेगी। आप कह देना, 'भाई, मैं तो हारकर बैठा हूँ।' हमारे पास एक सज्जन आए थे। मैंने उनसे कहा कि, ''आपको हारकर जाना पड़ेगा। इसके बजाय मैं हारकर बैठा हूँ। तू आराम से खाकर-ओढ़कर सो जा न! तुझे जिसकी ज़रूरत थी, वह तुझे मिल गया। 'दादा' को हराने की इच्छा है न? तो मैं खुद ही कबूल करता हूँ कि मैं हार गया।''

अर्थात् इनकी बराबरी कैसे कर पाएँगे? यह सारी तो माथापच्ची कहलाती है। इस देह को मार पड़े तो अच्छा, लेकिन यहाँ तो दिमाग़ को मार पड़ती है। वह तो बहुत परेशानी है।

जगत् की मिठास चाहिए और यह भी चाहिए, दोनों नहीं होगा। जगत् में तो अगर कोई हराने आएँ न, तो हारकर बैठना चाहिए चैन से। लोग तो उनकी भाषा में जवाब देंगे। 'बड़े शुद्धात्मा हो गए हो?' ऐसी सब गालियाँ भी देंगे क्योंकि लोगों का स्वभाव ही ऐसा है। खुद को मोक्ष में जाने का मार्ग नहीं मिला है इसलिए दूसरों को भी नहीं जाने देते, ऐसा है लोगों का स्वभाव! यह जगत् मोक्ष में जाने दे ऐसा है ही नहीं, इसलिए इन्हें समझा-बुझाकर, आखिर में हारकर भी कहना कि, 'हम तो हार चुके हैं।' तब वे आपको छोड़ देंगे।

ये लोग तो किसी की भी नहीं सुनते थे न! इसलिए हमें समझ जाना चाहिए कि हराने आए हैं, तभी से कहना चाहिए कि 'भाई, मैं तो हारकर बैठा हूँ। आप जीत गए, मैं तो आपसे हार गया।' ऐसा कहेंगे तो उसे नींद आएगी कि 'मैंने चंदूभाई को हरा दिया।' इससे उन्हें संतोष होगा!

'मेरे साथ ऐसा क्यों', ऐसा कहते ही लिया रस

प्रश्नकर्ता : कई बार कोई आक्षेप लगाए तब अहंकार आहत होता है, अहंकार को ठेस लगती है, तब सामने वाले से खुद को ठेस लगती है, उसकी बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : उसे तो लेट गो करना। यदि अपने अहंकार को ठेस लगे तब तो बल्कि अच्छा है। आपसे उसके अहंकार को ठस लगे तो उसकी ज़िम्मेदारी आप पर है लेकिन यह तो बल्कि अच्छा है। अंदर का सब से बड़ा तूफान खत्म हो गया!

प्रश्नकर्ता : अंदर हम सब समझते हैं कि अहंकार को ठेस लग रही है। ऐसा पता भी चलता है, लेकिन तब भी वह घायल अहंकार दुःख देता है।

दादाश्री : वह (अपना अहंकार) दुःख दे तब समझना कि आज बहुत फायदा हुआ।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा सब नहीं रहता।

दादाश्री : वह तो रहेगा, अभी नहीं रहेगा तो बाद में रहेगा। कभी न कभी तो ऐसा रहेगा

ही न! अभी आपको आदत नहीं है इसलिए नहीं रहता। कड़वी चाय पीने की आदत नहीं है न! इसलिए फिर जब वह कहेगा कि 'ओहो! इसका स्वाद तो अच्छा है, चाय जैसा है,' तो अच्छा लगेगा। यह तो, कड़वी कभी पी नहीं है न, इसलिए शुरुआत में पीना अच्छा नहीं लगेगा। क्योंकि, अगर कोई अहंकार को ठेस पहुँचाए तो वह तो अच्छा है। मन को ठेस पहुँचाने पर बहुत फायदा नहीं होता। कोई अहंकार को ठेस पहुँचाए तो वह बहुत फायदेमंद है। यदि हम किसी के अहंकार को ठेस पहुँचाएँ तो वह बहुत बड़ा नुकसान है। हमें तो, जो घाटा है, उसे खत्म करना है न! नहीं समझे आप?

प्रश्नकर्ता : आप जो कह रहे हैं, वह सब समझ में आता है, लेकिन फिर भी वह दु:खता रहता है, वह नहीं दु:खे उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : वह तो उतना दु:ख भुगतने का कर्म लिखा हुआ है, *अशाता* (दु:ख परिणाम) वेदनीय भुगतनी हो न, तो होता रहेगा। तो उस दु:ख भुगतने वाले को हमें जानना है कि यह भुगत रहा है। हमने उसमें रुचि ली कि कर्म चिपक जाएगा!

प्रश्नकर्ता : रुचि ली मतलब क्या?

दादाश्री : 'मुझे ऐसा क्यों हो रहा है? मुझे ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा क्यों कर रहा है वह?' उसे 'रुचि लेना' कहते हैं। ऐसा कुछ आए तो उसे बहुत गुणकारी मानना कि 'ओहोहो, आज बहुत बड़ा नुकसान चुक गया!'

प्रश्नकर्ता : दादा, ये सारे बाहर के एडजस्टमेन्ट हैं कि, 'तेरा बहुत उपकार है कि मुझे नुकसान हुआ, बहुत अच्छा हुआ, तेरा भला हो।'

दादाश्री : हाँ, यदि ऐसे एडजस्टमेन्ट करेंगे तभी अंदर के एडजस्टमेन्ट हो पाएँगे, वर्ना अंदर के एडजस्टमेन्ट नहीं हो पाएँगे न! बाहर के एडजस्टमेन्ट लेंगे तो अंदर का सॉल्यूशन आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : बाहर के सभी एडजस्टमेन्ट्स के बारे में पता है लेकिन वे कुछ हद तक ही काम आते हैं, फिर कुंद हो जाते हैं।

दादाश्री : इस तरह से शुरुआत करते-करते फिर बिल्कुल खत्म हो जाएगा। अभी उसमें इन्टरेस्ट है इसलिए यह दु:ख सहन नहीं होता। इन्टरेस्ट आता है अंदर।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं है कि सहन नहीं होता, दूसरों को पता चले या न भी चले, लेकिन भीतर खुद का अपना अहंकार दु:खी होता रहता है।

दादाश्री : वह जो दु:खता है, उसी को 'देखना' है न हमें! ज़्यादा दु:खे तो अच्छा है। बहुत फायदा हुआ। तब वहाँ दु:खी होकर खत्म ही करना है न! वह तो बिल्कुल नफा-नुकसान रहित ही हो जाएगा न! नुकसान भी नहीं और नफा भी नहीं, तो बहुत अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : यह हकीकत है या सिर्फ आश्वासन देने के लिए है? अहंकार से ऐसा कहें न, तो वह कहता है कि ये सारे आश्वासन हैं।

दादाश्री : तो फिर और क्या है? आश्वासन नहीं तो और क्या दें?

प्रश्नकर्ता : सोलिड चाहिए उसे तो।

दादाश्री : सोलिड ही है न! हमें चंदूभाई से कहना है 'आपको लेना हो तो लो, वर्ना हम तो ये रहे! आपका घाटा आपके लिए बढ़ेगा, हमें

क्या हर्ज है?' यानी यही आश्वासन है, वर्ना और क्या कह सकते हैं? उसके सामने क्या हम ज़हर पी लें? उसे पीना हो तो पीए।

हमने तो यह पूरी दुनिया देख ली है। मुझे तो बल्कि आनंद होता है यदि ऐसा कुछ आए तो।

प्रश्नकर्ता : सॉल्यूशन नहीं मिलता। क्या पूछूं? मुझे जैसा चाहिए वैसा नहीं मिलता।

दादाश्री : नहीं। अगर वह नहीं मिलेगा तो अपने आप ही ठिकाने पर आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा तो नहीं कह सकते न, कि अपने आप ठिकाने पर आएगा। अपने आप ठिकाने पर आएगा? वह कैसे? उसका तो कोई अर्थ ही नहीं है न? ऐसे तो बैठे ही रहना है न?

दादाश्री : बैठे रहना ही उत्तम है। उसे 'देखते' रहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर अहंकार जलता रहता है। उसका क्या?

दादाश्री : जितना जलेगा उतना कम होता जाएगा। हमें यह सब कम ही करना है न! लकड़ी जला देनी है, जितनी जल जाएगी, उतना कम। बल्कि और भी ज़्यादा जले तो अच्छा है। 'देखते' रहना। जलाना ही है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर अंदर खुद थोड़ा-बहुत जलने लगता है... जब अहंकार जल रहा होता है, तब उसकी आंच खुद को भी लगती है न, दादा?

दादाश्री : खुद को वह जो आंच लगती है, उसे भी जानना है न कि भाई, इतना बड़ा विस्फोट हुआ कि उसकी आंच लगी। आंच लगे तो हट जाना वहाँ से। क्योंकि आत्मा ऐसा है कि उसे आंच छूती ही नहीं। वह मन में मानता है कि, 'मुझे आंच लगी,' वह तो गलत है। लगी, ऐसा दिखाई ज़रूर देता है लेकिन उसे स्पर्श नहीं करती, उसे दुःख नहीं देती। उसे ऐसा भी लगता है कि 'मुझे जला डाला'। लेकिन आत्मा ऐसा है कि कुछ भी नहीं छूता। सौ प्रतिशत गारन्टी है उसकी। इतना अच्छा आत्मा दिया है फिर ऐसी सारी बात ही कहाँ रही? आप जितना नुकसान उठाएँगे उतना होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, जो आत्मा दिया है न, दिन भर उसका पूरा-पूरा अनुभव कैसे रह सकता है?

दादाश्री : हाँ। लेकिन जो उल्टा रहता था, वह सीधा रहने लगा है इसलिए फिर आप पूछ-पूछकर आगे चलने लगो न! वह जो पाँच सौ के नुकसान वाला है, उसका *निकाल* (निपटारा) हो जाता है लेकिन जिसमें पाँच हज़ार का नुकसान हुआ हो, उसमें देर लगेगी। उसे आपको देखते ही रहना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : जिसके प्रति भाव था, उसी के प्रति अभाव रखना है। अतः यदि अभाव रहता है तो आपको समझना है कि यहाँ पर भाव बहुत रहता था, उसी कारण हमें कड़वा मिल रहा है।

उस पक्ष में बैठ जाते हैं इसलिए समझ में नहीं आता। ऐसा है कि यदि स्वतंत्र होना हो तो यह सब समझ में आ जाएगा। हमें उसके पक्ष में रहने का मतलब ही क्या है? न लेना, न देना।

प्रश्नकर्ता : दादा, छूटना है, छूट नहीं पा रहा हूँ।

दादाश्री : अरे! छूटना है लेकिन छूट नहीं पा रहे हो, वह तो आप जानते हो न। अगर आप

उसके पीछे लगे रहेंगे अपने आप ही धीरे-धीरे छूट जाएगा। आपको जानना चाहिए कि यहाँ पर यह पट्टी चिपकी हुई है जो उखड़ नहीं रही। पानी लगाएँगे, कुछ और लगाएँगे, ऐसे करते-करते उखड़ जाएगी। उखड़े बगैर चारा ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : तो क्या आशा रखकर बैठे रहना है?

दादाश्री : आशा रखनी ही नहीं है। बैठे नहीं रहना है। जो छूट नहीं रहा है, उसे आपको देखते रहना है। भला, आशा किसे रखनी है? आत्मा को कोई आशा नहीं रहती। क्या एक ही घंटे में पूरा नुकसान खत्म हो सकता है? अनंत जन्मों का नुकसान है, दो-तीन जन्म तो लगेंगे न! इससे पहले तो यह लाख जन्मों में नहीं जा सकता। दादा के ज्ञान से इतना सरल हो गया है। बल्कि दादा के ज्ञान के बारे में तो ऐसा कहना चाहिए कि 'धन्य भाग! मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ और दादा मिले।'

जब मान दे उसके सामने उपाय

प्रश्नकर्ता : प्राप्त करनी है अयाचक दशा और अंदर तो हर एक बात की भीख पड़ी हुई है। अब, जो भीख है, वह जाए कैसे?

दादाश्री : अयाचकपन को तो जाने दो न, लेकिन यदि भीख चली जाए तब भी बहुत हो गया। यह भीख तो, अब यदि आप किसी के कम्पाउन्ड में से होकर जा रहे हों और वह व्यक्ति गाली देने लगे तो रोज़ वहाँ से होकर जाना चाहिए, रोज़ गालियाँ खानी चाहिए लेकिन उपयोगपूर्वक सहन करना चाहिए। वर्ना, उसे आदत पड़ जाएगी। और ढीठ हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक सहन करना अर्थात् क्या?

दादाश्री : अगर कोई आपकी बहन को उठाकर ले जाए, तो उस उठाने वाले पर क्या आपको प्रेम आएगा? क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : द्वेष होगा।

दादाश्री : तब वह नींद में होता है या उपयोगपूर्वक? हंड्रेड परसेन्ट उपयोगपूर्वक होता है, एकदम उपयोगपूर्वक होता है।

फिर जब चोरी करने जाता है, तब वहाँ उपयोगपूर्वक जागृति रखता है या सोता है?

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक रखता है।

दादाश्री : अत: उपयोग को समझ जाओ। यहाँ पर तो उपयोग वाले ही काम आते हैं। जब कोई अपमान करे तब यदि ऐसा पता चले कि मुँह बिगड़ गया है, तो फायदा या नुकसान नहीं होता। नो लॉस, नो प्रॉफिट! और यदि बाहर मुँह बिगड़ जाए तो नुकसान हो जाता है। नुकसान किसे होता है? *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) को, आत्मा को नहीं और यदि बाहर मुँह नहीं बिगड़े, क्लियर रहे तो इसका मतलब आत्मा का आनंद रहा। आत्मा का फायदा होता है न!

प्रश्नकर्ता : यदि मुँह बिगड़ जाए तो *पुद्गल* को क्या नुकसान होता है?

दादाश्री : *पुद्गल* को तो नुकसान हो ही गया न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वह जागृतिपूर्वक रहे तो उनका मुँह नहीं बिगड़ेगा।

दादाश्री : कितनों को तो, अपमान होने

पर आज यदि उनका मुँह बिगड़ जाए, तो उसे खुद को पता चल जाता है। बाद में जब मैं पूछता हूँ कि, 'तुझे खुद को पता चला?' तब कहता है, 'हाँ! पता चला।' लेकिन वह ठीक कैसे करे? उसके बावजूद भी उसे ठीक कर देना है। अंत में सहज ही करना है। वैसा सहज तो, जब बहुत समय से सुनता आए तब सहज होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : कोई गालियाँ दे तो वापस उसके कम्पाउन्ड में से होकर जाएँ लेकिन क्यों जाना चाहिए?

दादाश्री : यदि आप पैसे देकर किसी को रखोगे तो, वह गालियाँ नहीं देगा। और पैसे देकर सुनने से असर नहीं होगा। उससे कुछ नहीं होगा। वह तो यदि कोई कुदरती रूप से गालियाँ दे न, तो उत्तम शक्ति आती है न! अत: यदि उस तरह की शक्ति की कमी हो तो आपको प्राप्त करने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने अपमान के सामने उपयोग बताया, वह हमें समझ में आया लेकिन मान में जो उपयोग रखना चाहिए उस पर थोड़ा प्रकाश डालिए।

दादाश्री : मान दें, तब तो उपयोगपूर्वक, अर्थात् क्या कि 'ये किसे मान दे रहा है', यह समझना चाहिए। 'मुझे नहीं, ये तो मेरे पड़ोसी को मान दे रहा है, *पुद्गल* को दे रहा है।

प्रश्नकर्ता : जब कोई मान देता है तब मीठा लगता है न, हमें! वह मिठाई की तरह मार देता है हमें!

दादाश्री : *पुद्गल* का कहोगे तो आप पर असर नहीं होगा न! लेना-देना नहीं है न आपको। मान-अपमान तो वह *पुद्गल* का कर रहा है, आपका नहीं। उसे कहते हैं जागृतिपूर्वक, उपयोगपूर्वक। चंदूभाई को मान दे तो उससे आपको क्या लेना-देना? कोई मान या अपमान करे तो इसे (*पुद्गल* को) सौंप देना, तो वह हितकारी होगा वर्ना हितकारी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : अब, ऐसा मानना कि हमें मान दे रहे हैं, उसकी जगह पर अगर हम ऐसा रखें कि ये दादाजी को मान दे रहे हैं, आत्मा को मान दे रहे हैं, तो?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। वे चंदूभाई को दे रहे हैं ऐसा जानना चाहिए। दादा को लेना-देना ही क्या है? दादा को मान की ज़रूरत ही नहीं है न! आत्मा को मान की ज़रूरत ही नहीं है। यह सब टेली होना (तालमेल बैठना) चाहिए। उससे सहमत होना चाहिए, उसे कहते हैं तालमेल। तालमेल सहमति से ही होता है। हमें पता भी चलता है कि यह भूल हो रही है।

जगत् को जो अच्छा लगता है, वही आपको देगा। आपको उसकी आदत नहीं हो जानी चाहिए। मान दे तब भी नहीं, अपमान करे तब भी नहीं। अपमान करने के लिए यदि किराये पर किसी को रखोगे तो क्या उसमें मज़ा आएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, उसमें मज़ा नहीं आएगा।

दादाश्री : यदि नाटक में गालियाँ दे तो क्या उसका असर होगा? 'तू नालायक है, तू ऐसा है, तू चोर है, बदमाश है' कोई ऐसा कहे तो, असर होगा? नहीं होगा। क्योंकि सेटिंग की हुई है।

असर में क्या होता है कि कोई गालियाँ दे तो 'यह मुझे ऐसा बोला ही क्यों?' ऐसा होता है। 'वे' उल्टे दिखें तो कहना कि, 'वे तो

सब से अच्छे इंसान है, तू ही गलत है।' ऐसे, गुणा हो गया हो तो भाग कर देना चाहिए और भाग हो गया हो तो गुणा कर देना चाहिए। यह गुणा-भाग किसलिए सिखाते हैं? संसार में निबेड़ा लाने के लिए।

सिर्फ गुणा ही हो तो कहाँ तक पहुँचेंगे? इसलिए हमें भाग लगाना पड़ेगा। जोड़-बाकी नेचर के अधीन है जबकि गुणा-भाग मनुष्य के हाथ में है। इस अहंकार से सात से गुणा हो रहा हो तो सात से भाग लगा देना, ताकि नि:शेष हो जाए।

बुरी आदतों के कारण लगती है मिठास

यह गुणा-भाग करने का तरीका आपको बताया, वह समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : ध्यान में आया लेकिन आप थोड़ा अच्छे से समझाइए, दोबारा समझाइए। गुणा-भाग अर्थात् नुकसान?

दादाश्री : ये जो जोड़-बाकी होते हैं, वे सारे नैचुरल एडजेस्टमेन्ट्स हैं। तो लोग अब उसमें *उपाधि* (परेशानी) करते हैं, बैंक में जो था वह खत्म हो गया। जब बैंक में जमा करता है तब वह आहाहाहा! करता रहता है और जब निकालना पड़े तब ओहोहोहो! करता रहता है। और रात में गुणा-भाग करता है। 'अब, दो मोटलें लीं', तीसरी लेनी है और फिर चौथी ले लेंगे।' क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, ठीक है। तो वह लोभ कहलाता है?

दादाश्री : नहीं, लोभ नहीं। गुणा-भाग करने की ये सारी आदतें तो अनादिकाल से हैं। ऐसा नहीं है कि लोभी ही ऐसा करता है, उसे ऐसी ही आदत है बुरी आदत पड़ चुकी है। उसका उपयोग अन्य जगह मत करना। तो यह सारा उपयोग इसमें करता है। फिर वापस साफ करके 'सो जाता है।' 'यह सब गलत हो गया', यों करते, हैं न।

'यह सब गलत हुआ', ऐसा करके, सब साफ करके सो जाता है कि, 'अरे! इसमें कहाँ टाइम बिगाड़ा?' लेकिन वह जो मिठास है, वह तो महसूस होती है न।

प्रश्नकर्ता : वह मिठास किस आधार पर महसूस होती है, दादा?

दादाश्री : पहले की वह जो बुरी आदत पड़ी हुई है तो कहेगा, 'इतना पीते थे, उसके बजाय इतना ही, थोड़ा सा ले लेते हैं'।

प्रश्नकर्ता : तो वह सब साफ करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अपने इस ज्ञान में तू एक्ज़ेक्ट हो जाएगा तो, धीरे-धीरे कम ही हो जाएगा और फिर कभी भी उसका रक्षण नहीं करना चाहिए। चाहे कैसे भी अपमान होते हो फिर भी रक्षण नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा है कि अपमान सहन करना सीख जाना चाहिए?

दादाश्री : जब मान चला जाएगा तब अपमान सहन करने की शक्ति आ जाएगी। क्रोध तो गुरखा है। 'मान ने' गुरखा रखा है कि यदि कोई अपमान करने आए तो उससे कहता है कि, 'तेल निकाल देना।' और दूसरा है, लोभ। उसने भी एक गुरखा रखा है। उसने कपट को रखा है। उसी को माया कहा गया है। अगर लोभ चला जाए तो माया भी चली जाएगी। क्रोध मान

का गुरखा है। 'मूर्ख हो, बेअक्ल हो' किसी ने अगर ऐसा कह दिया तब हमें कहना चाहिए, 'भाई, मैं आज से नहीं, पहले से ऐसा ही हूँ।' ऐसा कहना।

खारा संसार मीठा क्यों लगता है?

क्या यह संसार अपमान निगलने के लिए है? अपमान के समय कड़वाहट लगती है और फिर क्या भूल जाना है? कड़वाहट लगे और बाद में भूल जाए तो उस इंसान को इंसान ही कैसे कह सकते हैं? एक बार यदि कड़वाहट लगी तो, फिर उसे भूल कैसे सकते हैं? किस आधार पर भूल जाते हैं? संसार तो मूलत: ऐसा ही है। खारा है फिर भी मीठा क्यों लगता है? मोह की वजह से। उससे संसार मीठा लगता है और उससे तो संसार में और अधिक गहरे उतरता है, इससे तो कड़वा अच्छा।

हमारे वहाँ पड़ोस में एक अंधी बुढ़िया और उनका बेटा रहता था। बुढ़िया सारा दिन घर संभालती और काम किया करती थी। उस व्यक्ति के घर एक दिन उसके साहब आए। ये घर के साहब और वे ऑफिस के साहब! दोनों घर आए। तो उस भाई को लगा कि 'मेरी अंधी माँ को मेरे साहब देखेंगे तो मेरी आबरू चली जाएगी'। उसने साहब के सामने खुद की माँ से कहा कि, 'अंधी उठ न, मेरे साहब आए हैं!' माँ को लात मारी और साहब के पास खुद की आबरू ढंकी। जैसे खुद बहुत बड़ा साहब नहीं हो! यह आबरू का बोरा! माँ की आबरू संभालनी होती है या साहब की?

ये आम किसलिए लाते हो? तब कहता है कि 'रस के लिए, स्वाद के लिए।' यह तो स्वार्थ वाला जगत् है! इसलिए अपने भीतर वाले भगवान सच्चे, और मोक्ष में गए तो काम हो गया, वर्ना ये तो 'उठ अंधी' ऐसा कहते हैं!

फिर कोई कहेगा कि, 'मेरे यहाँ बच्चे नहीं हैं।' इन बच्चों का क्या करना है? ऐसे बच्चे हों, वे परेशान करें, वे किस काम के? इससे तो सेर मिट्टी नहीं हो तो अच्छा, और कौन से जन्म में तेरे यहाँ सेर मिट्टी नहीं थी? ये कुत्ते, बिल्ली, गधे, गाय, भैंस उन सभी जन्मों में बच्चों को ही गले से लगाकर फिरे हैं न? यह एक मनुष्य जन्म महामुश्किल से मिला है। वहाँ तो सीधा चल न! और मोक्ष का कुछ साधन ढूँढ निकाल, और काम निकाल ले!

बचपन में मैंने अपनी नज़रों से देखा है, वह बताता हूँ आपको। एक अँधे वृद्ध थे, जब वे खाना खाते थे, तब बच्चे उनकी थाली में कंकड़ डाल आते थे। वे परेशान होकर चिढ़ते और चिल्लाते थे। तब वे बच्चे खुश हो जाते, फिर और ज़्यादा कंकड़ डालते! ऐसा है यह जगत्! और वापस ऐसे कितने जन्म होने वाले हैं, उसका ठिकाना नहीं! मोक्ष का सिक्का लग चुका हो तो शायद दो-तीन जन्मों में ठिकाना पड़ जाएगा। लेकिन ऐसा सिक्का नहीं लगा है, फिर भी लोगों को इस जगत् पर कितना मोह है!

बिल्ली लालच के मारे मुँह ज़ोर से बर्तन में डाल देती है, फिर निकल नहीं पाता! वह मुँह क्यों डालती है? स्वार्थ और लालच की वजह से ही न? वह स्वार्थ और लालच ही अज्ञान है! इसलिए हमें क्या सीखने की ज़रूरत है कि,

हम कौन हैं?

इनसे हमें क्या लेना-देना है?

ये मेरे बनेंगे या नहीं?

पैंसठ सालों से इन दाँतों को घिस रहे हैं,

फिर भी वे साफ नहीं होते! तो क्या हमारी समझ में नहीं आना चाहिए कि चीज़ सच्ची है या झूठी। सारी ज़िंदगी इस जीभ का मैल उतारा, फिर भी मुई साफ नहीं हुई! रोज़ दाँत की कितनी संभाल की, घिसते रहे फिर भी वह भी अंत में सगा तो नहीं ही हुआ न? आज यह दाढ़ दुःखने ही लगी न? ऐसा है यह जगत्। यह संसार है ही ऐसा कि खरे टाइम पर कोई सगा नहीं रहता। बहू रोज़ सास के पैर दबाती हो और एक दिन बहू के पेट में दुःखे तो सास कहेगी कि, 'अजवायन फाँक ले।' ऐसा तो सब कहेंगे। पर क्या सास बहू का दुःख ले लेगी? अरे! पति या बच्चों में से कोई ले लेगा? यह जगत् कैसा है कि जब तक यह बैल लंगड़ा नहीं हो जाए तब तक काम करवाते हैं। लेकिन जब वह चलना बंद कर दे तब बूचड़खाने में छोड़ आते हैं! जब पिता जी कमाकर ला रहे हों या काम कर रहे हों तो पापा अच्छे लगते हैं, लेकिन यदि काम करना बंद कर दें तो घर में सब क्या कहेंगे कि 'आप अब ऐसे इस तरफ बैठो। आपमें अक्ल नहीं है!' ऐसा है यह जगत्! पूरा संसार दगा है! यदि ज़रा सा भी सगा होता तो क्या ये 'दादा' आपको बताते नहीं कि इतना रिश्ता सच्चा है? लेकिन यह तो संपूर्ण रूप से दगा ही है। कभी भी सगा नहीं हुआ। जीवित लट्टू चैन नहीं लेने देता। अरे! यहाँ सत्संग में आना हो, सिर्फ दर्शन करने आना हो, तो भी नहीं आने दें। ये आपको आने देते हैं, वह तो बहुत अच्छा है।

इस दुषमकाल के जीवों की समझ में मोह और मूर्च्छा भरे हुए हैं, इसलिए कृपालुदेव ने इस काल के जीवों को हत्पुण्यशाली कहा है! ये लोग पूरे दिन क्रोध-मान-माया-लोभ और राग-द्वेष करते रहते हैं!

सुख रिपे करने हैं दुःख भुगतकर

बेटा यदि 'पापा जी, पापा जी' करे तो वह कड़वा लगना चाहिए। यदि मीठा लगा तो उसे लोन का सुख कहा जाएगा। फिर उसे दुःख के रूप में वापस देना पड़ेगा। जब बेटा बड़ा होगा तब आपसे कहेगा, कि 'आप बेअक्ल हो।' तब ऐसा लगेगा कि ऐसा क्यों? तो आपने वह जो उधार का सुख लिया था, उसे वह वापस ले रहा है। अतः पहले से ही सावधान हो जाओ। हमने तो उधार का सुख लेने का व्यवहार ही छोड़ दिया था।

अब, ये जो सुख लेते हो न, वे सभी तो लोन पर लेते हो। वे सब वापस रिपे करने पड़ेंगे। अतः सावधान होकर चलना। लोन पर लिए गए सभी सुख रिपे करने पड़ेंगे। यह पत्नी से, बेटे से, जो सुख ले रहे हो न, वह लोन पर ले रहे हो, वे रिपे करने पड़ेंगे। आपमें जितना रिपे करने की शक्ति है उतना लोन पर लेना, वर्ना बाद में सहन नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : संसार भोगने में सुख चखा, तो बाद में दुःख किस प्रकार से आएँगे?

दादाश्री : वह लोन तो इतना भारी पड़ेगा कि मरने के विचार आएँगे, 'कहाँ जाकर मरू !' अभी तो जब इसका लोन रिपे करने का समय आएगा न तब पता चलेगा। अभी तो पत्र नहीं आया रिपे करने का, अतः सोच-समझकर यह लोन लेना। यह लोन ले रहा हूँ तो उसे रिपे करना पड़ेगा, ऐसा समझकर लेना। ये जितने भी सांसारिक सुख हैं न, वे सभी रिपे करने पड़ेंगे।

अहो! खुद के आत्मा में अनंत सुख हैं! उन्हें छोड़कर इस भयंकर गंदगी में पड़ना?

राग-द्वेष के कारण लगता है मीठा

पिछले जन्म के बच्चों को कहाँ छोड़ आए? उस समय उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लग रहा था। मन में तो ऐसा था कि अभी और जीएँ तो अच्छा, वह बेटा छोटा है। लेकिन नहीं जी पाए और बेटे-बेटियों को छोड़कर आए। क्या वह भूल गए? लो! और यह नया भेष, नई दुनिया! उन बच्चों को धोखा दिया और ये नए बच्चे पकड़े! ऐसा कैसे किया? यह सब देखो तो सही! और जगह-जगह ऐसा ही सब किया है!

प्रश्नकर्ता : इसी में लाखों-करोड़ों जन्म बिता दिए।

दादाश्री : हाँ, ऐसे करोड़ों जन्म लिए हैं। अत: इस बार.. यदि इस एक जन्म में या दो जन्मों में मोक्ष में जाना है तो उसके लिए यह बात कर रहा हूँ। अत: बात को समझ जाओ न! ये 'दादा' दोबारा नहीं मिलेंगे। ये तो मिल गए सो मिल गए। वर्ना ये दोबारा नहीं मिलेंगे। अत: बात को समझ जाओ न! इससे अनंत जन्मों के फेरे छूट जाएँगे और पूरा हल आ जाएगा।

ज़रा बैराग तो आना चाहिए या नहीं? हम भागने या साधु बनने के लिए नहीं कहते हैं। अपने यहाँ ऋषि और ऋषि पत्नी साथ में रहते थे तब भी पूरी ज़िंदगी में एक पुत्र दान देते थे और ये तो, पाँच-सात बच्चे! एक व्यक्ति मुझसे कहने लगा, घर में मेरे हिस्से में चाय पीने लायक दूध भी नहीं आता। मैंने पूछा, 'क्यों?' तब कहने लगा कि, 'चार बेटियाँ हैं और दो बेटे हैं।' अरे! तुझसे किसने कहा था? सरकार ने कानून बनाया है तो सीधे रहना चाहिए या नहीं?

अब तो शांति से रह! लेकिन नहीं रहता! वह बच्चा फिर बड़ा होकर जब दो-चार लगाएगा, तब यह कहेगा कि, यह संसार खारा है। तो यह राग-द्वेष के कारण मीठा लगता था!

यह एक मनुष्य जन्म महामुश्किल से मिला है, वहाँ तो सीधा चल न, भाई! कुछ तो मोक्ष का साधन ढूँढ निकाल और काम *निकाल* ले!

गहराई में संसार लगता है कड़वा

प्रश्नकर्ता : अभी तो यह संसार अच्छा लगता है।

दादाश्री : कड़वा नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : गहराई में जाने पर कड़वा लगता है।

दादाश्री : इतनी अधिक कड़वाहट लगती है फिर भी इस जीव का स्वभाव कैसा है? वह आम खाकर फिर से सो जाता है! अरे, अभी तो बीवी से झगड़ा किया था और फिर क्या देखकर आम खाता है? जिससे लड़ाई होती है, वही बीवी यदि आम काटकर दे, वह किस काम का? लेकिन आप चला लेते हो या नहीं? फिर जब आप लड़ते हो तो वह भी चला लेती है। फिर क्या करेगी वह? दोनों 'मैजिस्ट्रेट'!

पूराने जमाने के लोगों को खाना-पीना नहीं मिलते थे, कपड़े-लत्ते नहीं मिलते थे तब भी चला लेते थे। और अभी तो किसी भी चीज़ की कमी नहीं है फिर भी इतनी अधिक कलह, कलह और कलह! उसमें भी फिर पति को इन्कम टैक्स और सेल्स टैक्स की झंझट रहती है, इसलिए वे अपने साहब से डरते हैं। और घर में पत्नी से पूछें कि, 'आप क्यों डरती हो? तब वह कहती है कि, 'मेरे पति बहुत

सख्त हैं।' ऐसे संसार में क्या आपको यह सब अच्छा लगता है?

मोह व मूर्च्छा से संसार लगता है मीठा

अब, संसार अच्छा नहीं लगता वह तय हो गया है। पक्का?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसा विश्वास तो हो गया है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, विश्वास हो गया है।

दादाश्री : ऐसा विश्वास हो जाना चाहिए। डेवलप्ड कौम किसे कहा जाता है? जिनकी स्त्रियाँ ऐसा कहें कि अब, यह संसार हमें अच्छा ही नहीं लगता। वह प्रजा डेवलप्ड कहलाती है। वर्ना, सभी स्त्रियाँ मोही होती हैं। मार खाती हैं फिर भी उन्हें अच्छा लगता है। लेकिन यह प्रजा डेवलप्ड क्यों कहलाती हैं, क्योंकि इनकी स्त्रियाँ भी जाग्रत हो गई हैं कि, 'भला इसमें कहाँ सुख है!' कड़वा लगता है। अरे! खारा लगता है! इस संसार से संबंधित सारा पानी खारा है। फिर भी लोग क्या कहते हैं? 'नहीं, मीठा हैं'। बोलो, कितनी भ्रांति है! कितनी भ्रमणा है!

एक बूढ़ी माँ जी थीं, सत्तर साल की। वे बाहर आकर कलह करने लगीं। 'अरे, यह संसार खारा, दुःख भरा है, मुझे तो यह अच्छा ही नहीं लगता। हे भगवान! तू मुझे उठा ले।' तब यदि कोई बच्चा पूछे, 'माँ जी, रोज़ कहते थे कि बहुत अच्छा है और आज खारा कैसे हो गया?' रोज़ तो मीठा अंगूर जैसा लगता था, और आज खारा क्यों हो गया? बच्चे ने ऐसा पूछा। तब माँ जी कहने लगीं, 'अरे! मेरा बेटा मुझसे झगड़ा करता है और बुढ़ापे में कहता है, तू यहाँ से चली जा।' हाँ, अरे! खारा, दुःख भरा ही लगता है संसार! लेकिन मोह के कारण, मूर्च्छा के कारण मीठा लगता था। जब तक बेटे ने कुछ कहा नहीं था तब तक मीठा था और ऐसा कहते ही मोह खत्म हो गया इसलिए खारा दिखाई दिया। यानी कि खारा कहने से मोह खत्म हो जाएगा न!

जब बेटा परेशान करता है तब उतने समय तक के लिए मूर्च्छा खत्म हो जाती है और संसार खारा लगने लगता है लेकिन फिर वापस मूर्च्छा आ जाती है और सबकुछ भूल जाते हैं! अज्ञानी तो एट-ए-टाइम सबकुछ भूल जाता है। जबकि 'ज्ञानी' को एट-ए-टाइम सबकुछ उपस्थित रहता है। उन्हें तो निरंतर यह जगत् 'जैसा है वैसा' दिखाई देता है, अतः फिर मोह रहेगा ही कहाँ से? यह तो उसे भान नहीं है, इसलिए मार खाता है।

जब सास से काम नहीं हो पाता तब बहू सास से क्या कहती है कि 'एक तरफ बैठो।' सास को चक्की पीसने बिठा देती है। सास से कहती है कि 'आप पीसो, ताकि बीच में न आओ।' जबकि माँ तो क्या समझती है कि 'बेटा बड़ा होकर मेरी चाकरी करेगा।' अब वह चाकरी करेगा या भाखरी (एक तरह की रोटी), वह तो बाद में पता चलता है! बंधे हुए हों तो मुक्त हो पाएँ, ऐसा नहीं है और मुक्त हो चुके हों तो बाँधा जा सके, ऐसा नहीं है! यदि 'स्वरूप का ज्ञान' मिला हो, तो इस फँसाव में से छूटा जा सकता है!

क्या बंधन अच्छा लगता है? क्या कभी इस बंधन से ऊब जाते हो?

प्रश्नकर्ता : ऊब ही है।

दादाश्री : ऊब है ही। ऊब आती नहीं, है ही ऊब। आप ऊब नहीं जाते? थोड़ी बहुत लगता है, बहुत नहीं? क्या चाय पीते समय भी

ऊब जाते हो? अच्छी टेस्टी चाय पीते हो तब भी बोरियत लगती है?

प्रश्नकर्ता : हर बार ऐसी बोरियत नहीं लगती। जब इसी में रचेपचे रहते हैं तब भूल जाते हैं।

दादाश्री : इसमें रचेपचे रहते हैं तभी तो बोरियत को भूल जाते हैं न? अर्थात् इसे तो मूर्च्छा कहा जाएगा। एक बार बोरियत होने के बाद... यदि हम एक बार अग्नि से जल जाएँ और फिर से उसे भूल जाएँ तो उसे मूर्च्छा ही कहा जाएगा न! एक बार अग्नि को छूकर जलने के बाद क्या फिर भूल जाते हैं?

यह तो हमेशा से खारा ही है, इसके बावजूद भी मूर्च्छा के कारण मीठा लगता है। फिर जब गाली देता है, नुकसान होता है, घर जल जाता है तब वह मूर्च्छा उतरती है। तब तक मूर्च्छा नहीं उतरती न! यानी ये सभी इस मूर्च्छा में हैं, मस्ती में, गधे की तरह मस्ती में रहते हैं। गधा अपने मन में मस्त! यह मूर्च्छित सुख है। वास्तवकि सुख तो आने के बाद जाता ही नहीं है, उसका अंत ही नहीं आता, उसे सनातन सुख कहते हैं।

बाहर के सुख छूटेंगे तो अंदर का सुख बरतेगा

सुख तो मोक्ष में ही है और मोक्ष के लिए राग-द्वेष नहीं, लेकिन अज्ञान निकालने की ज़रूरत है। जिस फल में सुख का रस ही नहीं है, रस है, लेकिन वह *शाता-अशाता* (सुख-परिणाम, दुःख-परिणाम) का ही है और उसमें भी *अशाता* का ही अपार रस है, उसमें तो सुख कैसा? दिन भर कड़वा पिलाते हैं और एक पाव मीठा पिलाते हैं, इससे तो पूरा ही कड़वा नहीं पी लें हम? यह तो हमें मूर्ख बना जाते हैं तो कैसे पुसाए? आधा दुःख हो और आधा सुख हो, पचास-पचास प्रतिशत हो, तब भी चलेगा। तब हमने यहाँ तक कहा है कि पचपन प्रतिशत दुःख और पैंतालीस प्रतिशत सुख होगा तब भी चलेगा। लेकिन इतना कहा और दुःख तो बढ़ने लगा और पाँच प्रतिशत सुख और पँचानवे प्रतिशत दुःख हो गया, यानी चटनी जितना ही सुख मिलता है, ऐसा लालच हमें नहीं पुसाएगा। भीतर असीम सुख पड़ा है। यदि बाहर का मच्छर तक याद नहीं आए न, तो 'वह सुख' बरतता ही रहेगा। यह तो बाहर की यादें सुख छीन लेती हैं।

'मेरा' कहकर लिपटाया

प्रश्नकर्ता : हम जानते हैं कि यह सुख लेने जैसा नहीं है, यह गलत है उसके बावजूद भी भूल हो जाती है। क्या वह, पिछले जो कर्म लेकर आए हैं, उसके कारण है?

दादाश्री : वह तो कचरा माल भरकर लाए थे। पूछे बगैर भरा हुआ माल! अज्ञानी लोगों को भी समझ में आ जाता है वह सारा माल। वह हमें निकालना तो पड़ेगा न? जैसा माल भरा है वैसा।

जहाँ समझ में आता है कि यह गलत माल भरकर लाए हैं, वहाँ पर आत्मविज्ञान है, वहाँ प्रज्ञा है, वह 'देखती' है। जो देखती है वह प्रज्ञा है। प्रतिक्रमण करके, 'यह मेरा नहीं है', इतना बोलेंगे तो भी बहुत हो गया। 'मेरा है' कहकर लिपटाया था। अब, 'यह मेरा नहीं है', कहकर छोड़ देना है।' ज्ञान लेने के बाद अच्छा रहता है। ज्ञान लिए बगैर नहीं हो सकता। जब ज्ञान देते हैं तब सभी पाप भस्मीभूत हो जाते हैं न! तभी से हल्का हो गया। वर्ना, बेचारा सत्संग सुनता रहता है लेकिन उससे कुछ भला नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लिए हुए पाँच-पाँच साल हो गए हैं फिर भी अभी तक हमारा मेल क्यों नहीं बैठता?

दादाश्री : मेल तो अब बैठा ही कहा जाएगा। ऐसा किस तरह का मेल बैठाना है?

प्रश्नकर्ता : इन भूलों में से।

दादाश्री : अंदर साफ हो जाएगा। अभी तो माल निकलता रहेगा। जो कचरा भरा हुआ है, वह तो निकलेगा ही न? वर्ना, टंकी खाली नहीं होगी न? पहले तो ऐसा समझते ही नहीं थे कि यह कचरा निकल रहा है। ऐसा ही समझते थे न, कि यह अच्छा निकल रहा है? उसी को संसार कहते हैं और ऐसा समझ गए कि यह कचरा माल है, वही मुक्त होने की निशानी है।

ऐसा है न, जैसे-जैसे साल बीतते जाएँगे न, वैसे-वैसे मोह कम होता जाएगा, बढ़ेगा नहीं। कुछ सालों बाद तो बिल्कुल खत्म हो जाएगा। हम यदि वहाँ टंकी में देखने जाएँगे न, तो कुछ भी नहीं बचा होगा। तब फिर परेशानी नहीं आएगी, उस समय बहुत मज़ा आएगा।

अब कोई विनाशी चीज़ नहीं चाहिए

प्रश्नकर्ता : अंदर कोई प्रोग्रेस होती है न, तो आनंद बढ़ता है। उसके बाद वापस कम क्यों हो जाता है?

दादाश्री : कम ही हो जाएगा न, लेकिन पिछले कर्मों के जो उदय आते हैं, वे धक्का मारते हैं न! जब वे धक्के लगेंगे तब फिर आनंद नहीं आएगा। पिछले कर्म हैं न! जब फल देते हैं तब मीठे भी लगते हैं न! अच्छा खाना आए तब मीठा लगता है न! उस समय अच्छा लगता है। उसके बाद कुछ और आए तो कड़वा लगता है। कड़वे और मीठे दोनों फल चखने पड़ेंगे। उसके बाद कड़वे-मीठे नहीं चखने होंगे, एक ही तरह का आनंद। लगातार रहने वाला आनंद आ जाएगा। जब मीठा आए तब भूल जाते हो न, कुछ देर के लिए?

प्रश्नकर्ता : अब तो वही सब ज़्यादा करना पड़ता है जो अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : जो पसंद था, उसे नापसंद किया। अब अच्छा नहीं लगता है, इसलिए उल्टा लगता है। नापसंद तो है ही लेकिन उसे तो हमने पसंद किया था, उसके बाद फँस गए थे।

'इस जगत् में कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए।' ऐसा आपने तय किया है न? फिर भी क्यों याद आता है? इसलिए प्रतिक्रमण करो। प्रतिक्रमण करते-करते फिर से वापस याद आए, तब हमें समझना चाहिए कि अभी तक यह शिकायत बाकी है! इसलिए फिर से प्रतिक्रमण ही करना है।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, जब तक उनका बाकी रहे तब तक प्रतिक्रमण होते ही रहते हैं। उसे बुलाना नहीं पड़ता।

दादाश्री : हाँ, बुलाना नहीं पड़ता। हमने तय किया हो तो वे अपने आप होते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : उदय आते ही रहते हैं।

दादाश्री : उदय तो आते ही रहेंगे। परंतु उदय यानी क्या? भीतर जो कर्म था, वह फल देने के लिए सम्मुख हुआ। फिर वह कड़वा हो या मीठा हो, जो आपका हिसाब हो वह! कर्म का फल सम्मुख आते ही यदि हमें चेहरे पर उकताहट लगे, तो समझना कि भीतर दुःख देने आया है और यदि चेहरे पर आनंद दिखे तो समझना कि

उदय सुख देने आया है। अर्थात् उदय आए तब हमें समझ जाना चाहिए कि ''भाई आए हैं, इसका 'समभाव से *निकाल*' कर देना है।''

प्रश्नकर्ता : परंतु उस समय प्रकृति थोड़ा-बहुत ज़ोर लगाती है न फिर से? प्रकृति का स्वभाव निकलता तो है न?

दादाश्री : सबकुछ निकलेगा, फिर भी 'हमें' 'देखते' रहना है। वह सारा अपना ही हिसाब है।

डिस्चार्ज प्रकृति में मत लो मिठास का आनंद

किसी भी प्रवृत्ति की प्रकृति जो बन ही चुकी है, तो जब तक वह प्रकृति करवाए तब तक करना लेकिन बढ़ावा मत देना। अंदर रुचि नहीं लेनी चाहिए। यह हितकारी प्रवृत्ति नहीं है। जो कार्य कर सकते हो न, वह डिस्चार्ज हो रहा है। जो कार्य आप से हो रहा है, वह डिस्चार्ज है। लेकिन उसमें आप जो रुचि लेते हो, वह रुचि मत लेना। ये रुचि लेने योग्य चीज़ें नहीं है। ये आपको भटकाकर फेंक देंगी। जो मीठा लगता है, स्वादिष्ट लगता है, वह गिरा देगा!

यह जो प्रकृति उत्पन्न हो चुकी है न, तो अभी आप उसके कर्ता नहीं हो, यह तो डिस्चार्ज है। इसीलिए हम डाँटते नहीं है कि 'ऐसा हुआ?' लेकिन आपको एन्करेज भी नहीं करते। आपको मन में ऐसा लगेगा कि 'न जाने क्या हो गया यह!' तो बल्कि बिगाड़ दोगे! बगैर समझे, किसे कितनी दवाई देनी है, वह जानते नहीं हो और चाहे किसी को भी दवाई दे दोगे। वह आपका काम नहीं है। यह सब तो प्रकृति है, उसे उदासीन भाव से देखते रहो। बहुत इन्टरेस्ट मत लेना। इस प्रकृति से किसी को नुकसान नहीं हो, उतना देख लेना।

खुद का जो कार्य है, वह करना। यह तो सिर पर आ पड़ी, भरी हुई प्रकृति है! छुटकारा ही नहीं हैं। ढूँढ निकालेगी कुछ उल्टा, वहाँ पर जा आएगी। जिसमें स्वाद आए, उसमें मिठास आती है। और फिर यह मिठास प्राकृतिक मिठास है, आत्मा की मिठास नहीं है। अभी तो बहुत कुछ करना बाकी है।

प्रश्नकर्ता : उसके बारे में ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : आप सभी ये पाँच आज्ञा ही पालो न, उसी में गहरे उतरो। अभी तक पाँच आज्ञा का भी पूरी तरह से पालन नहीं हो रहा न! यह तो, आपको अच्छा लगे ऐसा कुछ कहते हैं। यानी कि हमें खुशी नहीं है, फिर भी खुशी दिखाई है।

प्रश्नकर्ता : आपको सभी गलतियाँ बताने का यही कारण है। हमें प्रोपर मार्गदर्शन मिलेगा ही यहाँ पर, ऐसा हमें दृढ़ विश्वास है। कुछ भी नहीं छुपाने का कारण ही यह है!

दादाश्री : वह तो जब मिठास आने लगती है न, तब छुपाने लगता है हम से! बाकी, शुरुआत में तो हम से पूछता है। उसके बाद जब बहुत मिठास आने लगती है, तब छुपाने लगता है। अत: सावधान होकर चलना।

जब कड़वा ज़हर जैसा लगेगा तब छूटेगा

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के बाद। लेकिन अंदर जो उत्पन्न होता है या फिर जो अंदर रहे हुए परिणाम हैं, उनका *निकाल* किस तरह से होता है?

दादाश्री : वह कड़वा ज़हर जैसा लगता रहता है इसलिए छूटता जाता है।

प्रश्नकर्ता : अत: जहाँ-जहाँ हूँफ (सलामती) ली जाती है, जो-जो अवलंबन लिए हैं अथवा लिए जाते हैं, वे कड़वे ज़हर जैसे लगने चाहिए?

दादाश्री : जब कड़वा लगता है तो छूट ही रहा होता है। जितने संयोग उतने ही अवलंबन।

प्रश्नकर्ता : इसमें अवलंबन छोड़ने के लिए एक दूसरा रास्ता भी हो सकता है न, अर्थात् ज्ञान की जागृति से भी अवलंबन छूट सकता है न?

दादाश्री : यदि ज्ञान जागृति है तो अवलंबन है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर अवलंबन है ही नहीं?

दादाश्री : अभी तक उसे दूसरे की हैबिट है इसलिए।

प्रश्नकर्ता : वह चीज़ मीठी लगती है। अवलंबन के ज़्यादातर कारण कौन से हो सकते हैं?

दादाश्री : इच्छाओं के कारण।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है, लेकिन बाधक अवलंबन कौन-कौन से हैं? जैसे कि उदाहरण के तौर पर घर का अवलंबन है, पत्नी का अवलंबन है।

दादाश्री : अरे, उन्हें तो गिनना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वे नहीं? तो?

दादाश्री : वह सब तो एक बड़ा-बड़ा हो गया। यह तो एक सर्कल की बात की है कि पाँच-सात संयोग हैं, स्त्री है, घर है, ऐसे तो करोड़ों संयोग हैं। सिर्फ स्त्री ही नहीं, सब को पार कर लिया है। सिर्फ पाँच-सात संयोग बचे हों फिर भी तभी से निरालंब कहलाने लगता है। पाँच-सात संयोग हों फिर भी!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् कुछ हद तक की निरालंब स्थिति प्राप्त हो जाती है?

दादाश्री : निरालंब होने पर ही वह खुद अपने आपको देख सकता है। देख सकना, शब्दरूपी नहीं है। शब्द तो अवलंबन है।

प्रश्नकर्ता : उसे खुद को पता चलता है कि वह खुद अवलंबनों की पकड़ में है?

दादाश्री : सभी कुछ पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : तो उससे छूटने के लिए क्या उपाय है?

दादाश्री : कड़वे ज़हर जैसा लगना चाहिए वह। क्या पता नहीं चलेगा कि यह मीठा लग रहा है और यह कड़वा लग रहा है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जहाँ-जहाँ मीठा लगता है अथवा कड़वा लगता है तो अभी तक वे अवलंबन पड़े हुए हैं।

दादाश्री : संयोग मात्र अवलंबन हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन संयोग तो आपको भी मिलते हैं फिर भी आपकी स्थिति निरालंब है, वह किस प्रकार से?

दादाश्री : हमें तो संयोगों की ज़रूरत नहीं है और बाकी ये जो सब मिलते हैं उनका हम *निकाल* कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : मतलब? क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि अभी जो संयोग मिलते हैं, वे पहले के किसी अवलंबन का परिणाम हैं?

दादाश्री : इच्छाओं का परिणाम हैं।

प्रश्नकर्ता : पहले की?

दादाश्री : अभी इच्छाएँ नहीं रहीं और पहले की इच्छाओं के परिणाम स्वरूप अभी संयोग मिलते हैं लेकिन वे कड़वे ज़हर जैसे लगते हैं, अच्छे नहीं लगते।

प्रश्नकर्ता : तो जैसे-जैसे उनका *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे और अधिक निरालंब स्थिति उत्पन्न होगी?

दादाश्री : हो ही चुकी है हमारी तो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उन संयोगों का *निकाल*...

दादाश्री : उनका *निकाल* हो ही रहा है क्योंकि प्रत्येक संयोग को देखते हैं, ज्ञाता-द्रष्टा बन जाते हैं! फिर भी थोड़े बहुत रह जाते हैं लेकिन खुद का स्वरूप दिख जाता है। उसके आधार पर संयोगों का पूर्णत: नाश कर सकते हैं, वर्ना कर ही नहीं सकेंगे न!

प्रश्नकर्ता : जब खुद का स्वरूप दिखने लगे तभी फिर वह अवलंबन, अवलंबन रूपी नहीं रहेगा न?

दादाश्री : खुद अपने आपको देख सके तभी से निरालंब होने लगता है। अभी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उस सर्कल में आया है।

प्रश्नकर्ता : अपने ये सभी महात्मा?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हं। यह शुद्धात्मा पद भी निरालंब स्थिति लाए, ऐसा पद है न? अत: जैसे-जैसे इन फाइलों का *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे वह आता जाएगा, निरालंब स्थिति वाला पद?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हमने दो प्रकार के अवलंबन कहे हैं, एक तो मिठास वाले अवलंबन और दूसरे कड़वाहट वाले अवलंबन। ठीक है न?

दादाश्री : दो प्रकार के संयोग होते ही हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो वे दोनों प्रकार के अवलंबन अंदर खड़े होते हैं लेकिन यदि खुद वहाँ से हट जाए तो क्या वह निरालंब स्थिति की तरफ जा सकता है?

दादाश्री : कैसे हट पाएगा लेकिन?

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान की जागृति से। बाहर संयोग हों लेकिन अंदर जागृतिपूर्वक हट जाए तो?

दादाश्री : लेकिन हटेगा कैसे? वह ज्ञाता-द्रष्टा रह पाए तभी कहा जाएगा कि वह हट गया।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि आज व्यवहार और संयोग आपके आसपास भी हैं और महात्माओं के आसपास भी व्यवहार व संयोग हैं लेकिन क्या इसमें बीच में कुछ ऐसा है जो कि आपको निरालंब स्थिति में रख सकता है।

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वही पद।

दादाश्री : वीतराग रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा किस प्रकार कह सकते हैं कि वह ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहा?

दादाश्री : वह उसे खुद को पता चल जाता है। वह मना ही करेगा कि 'मैं नहीं रहा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा भी कहा था कि 'हमने वह स्वरूप देख लिया है इसलिए इस तरफ निरालंब स्थिति रह सकती है', तो क्या ज्ञाता-द्रष्टापने में भी ऐसा ही है?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टापद का तो खुद को पता चल जाता है न, आपको पता चलता है न? उपयोग में रहते हैं, कहाँ उपयोग रहता है, सबकुछ पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : तो पूछना यह था कि फिर ज्ञाता-द्रष्टापना रहना और स्वरूप दिखाई दे जाना, ये दोनों स्थितियाँ एक ही हैं या दोनों में अंतर है?

दादाश्री : अलग-अलग हैं। ज्ञाता-द्रष्टा हर एक व्यक्ति रह सकता है न!

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब स्वरूप दिखाई देना उत्तम है।

दादाश्री : वैसा है ही नहीं किसी को।

प्रश्नकर्ता : अर्थात्? अपने महात्माओं में किसी को भी नहीं?

दादाश्री : हो ही नहीं सकता न। उनका काम भी नहीं है। बेकार ही पूछ रहे हो! जीवन टेन्शन रहित हो जाए, हास्य उत्पन्न हो जाए, वह सब मिल जाए उसके बाद स्वरूप दिखाई देता है। यह क्या कोई गप्प है? अभी तो आज्ञा में रहो। समझना अलग चीज़ है और आज्ञा में रहना अलग चीज़ है। बस और कुछ भी नहीं।

अभी आज्ञा में रहो, बस इतना ही। जब उसका फल आएगा तब न! अभी पढ़ रहे हैं फर्स्ट स्टैन्डर्ड में, सेकन्ड स्टैन्डर्ड या चौथे में, पाँचवें में, बेकार ही क्यों उछल-कूद करें, मैट्रिक तक! अभी तो हास्य उत्पन्न नहीं हुआ है, टेन्शन गए नहीं हैं। समझना अलग चीज़ है लेकिन बिना बात के बेकार ही भटकना, छलांग लगाना, इससे तो नीचे जाकर खो जाएँगे। अत: आज्ञा में रहकर धीरे-धीरे आगे बढ़ो न! आज्ञा में रहना और कल्याण की भावना करना। यह इस जन्म में पूरा होगा या अभी और कितने जन्म लगेंगे, उसका ठिकाना नहीं है न! बेकार ही उछल-कूद क्यों करें!

प्राकृतिक मस्ती, भूल-भूलैया वाली

अत: जो कुछ मोक्षमार्ग में बाधक हो उसे छोड़ देना और आगे बढ़ो फिर से। वह ध्येय से पर कहलाता है न! खुद का ध्येय चूक नहीं जाए, कैसे भी कठिन परिस्थिति में भी खुद का ध्येय नहीं चूके ऐसा होना चाहिए।

आपका ध्येय अनुसार चलता है क्या कभी? उल्टा नहीं कुछ भी? यह तो सहज हो गया है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : यानी अंदर 'हैन्डल' घुमाते रहना पड़ता है।

दादाश्री : घुमाते रहना पड़ता है? लेकिन क्या वे अंदर वाले मान जाते हैं? तुरंत ही?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही।

दादाश्री : तुरंत? देर ही नहीं लगती? यह अच्छा है। जितना वे मान जाएँगे, उतना ही वह मुक्त होने की निशानी है। उतने ही हम उससे अलग हैं, वह निशानी है उसकी क्योंकि खुद कोई रिश्वत नहीं लेता। रिश्वत लेगा तो वे बात नहीं मानेंगे। 'खुद' उनसे रिश्वत खाता है तो वे आपकी बात नहीं मानेंगे फिर। 'खुद' स्वाद ले आता है, फिर 'अंदर वाले' नहीं मानते।

यह व्यवहार तो दूसरी ओर ही ले जाता है न! अनादि से जिसकी आराधना की है, वह यही एक मार्ग है न! व्यवहार तो हमेशा ही उस तरफ की आदत वाला होता है न! अत: अगर उस तरफ जाए तो भी हमें अपने ध्येय के अनुसार चलाना है। अगर पुराना रास्ता देखे तब बैल तो

उसी रास्ते पर चलता जाता है। हमें अब अपने रास्ते पर ध्येय के अनुसार चलना है। इस रास्ते से नहीं, दूसरे रास्ते से जाना है। 'ऐसे चल' कहना।

अत: अगर खुद रिश्वत नहीं लेता है तो अंदर वाले तुरंत ही कहे अनुसार मुड़ जाते हैं लेकिन अगर रिश्वत लेता है तो फिर मार खिलाते हैं, हर बात में मार खिलाते हैं। इसलिए ध्येय से पीछे नहीं हटना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह रिश्वत कैसी होती है?

दादाश्री : चख आता है और चखते समय फिर जब मीठा लगता है न, तो फिर वहाँ पर बैठ जाता है। 'टेस्ट' कर आया इसलिए वापस फिर थोड़ा एकाध-दो बोतल पी आता है। यह सब चोर दानत कहलाती है। ध्येय तक पहुँचना है और ऐसी चोर नीयत? ये दोनों साथ में कैसे रह सकते हैं? नीयत पक्की रखनी चाहिए, कोई भी रिश्वत लिए बगैर। यह तो वह मस्ती चखने की आदत होती है इसलिए ऐसे वहाँ बैठकर ज़रा वह मस्ती के आनंद में रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रकृति की मस्ती?

दादाश्री : तो फिर और क्या? उसे उसी की आदत पड़ गई है न! इसलिए अगर 'आप' कहो कि, 'नहीं, हमें तो अब ऐसे जाना है। मुझे मस्ती नहीं चाहिए। हमारे ध्येय के अनुसार चलना है।' ये प्रकृति की मस्तियाँ तो भूल-भूलैया में ले जाती हैं।

जो ध्येय तुड़वा दें, वे अपने दुश्मन हैं। अपने ध्येय का नुकसान करवाए तो वह कैसे पुसाएगा?! अब्रह्मचर्य के विचार में मिठास तो आती है, लेकिन क्या हो सकता है? यह भयंकर गुनाह है न! फिर उसके खुद के ध्येय में 'टी. बी.' ही हो जाएगी न! सड़न ही घुसने लगेगी न!

यहाँ तो खुद का मन इतना मज़बूत कर लेना है न, कि "इस जन्म में जो हो, भले ही देह चली जाए, लेकिन इस जन्म में कुछ 'काम' कर लूँ" ऐसा तय करके रखना चाहिए तब फिर अपने आप काम होगा ही। आपको अपना तय करके रखना चाहिए। आपकी तरफ से ढील नहीं रखनी है। जहाँ ऐसा प्राप्त हुआ है वहाँ ढील नहीं रखनी है।

अब तो आधार को तोड़ना ही है पुरुषार्थ

अपना ज्ञान लेने के बाद वस्तुस्थिति में प्रयोग करना चाहिए। अनादि काल से यह संसार किस आधार पर टिका हुआ है? जो आधार अभी तक नहीं टूटा है। अत: उस आधार को तोड़ते रहना पड़ता है। जिस आधार पर यह जगत् टिका है, संसार टिका है। उस आधार को तोड़ते रहना है।

अब, संसार किस आधार पर टिका रहा है? तब कहते हैं, मन के जो पर्याय हैं, मन की जो अवस्थाएँ हैं, उसमें आत्मा तन्मयाकार होता है इसलिए संसार टिका हुआ है। न तो बुद्धि परेशान करती है, न ही कोई और परेशान करता है। यह तो आत्मा उसमें तन्मयाकार हो गया इसलिए संसार टिका हुआ है। अत: मन के पर्यायों को तोड़ते रहना चाहिए। 'ये मेरे नहीं हैं, मेरे नहीं हैं', इस तरह वहीं पर बैठे-बैठे हिलाते रहना चाहिए। उन्हें तोड़ता रहेगा तो मुक्त हो जाएगा। अनादि से जो अभ्यास है न, वह मुक्त नहीं होने देता। अनादि से जो अभ्यास है न, उसकी वजह से मिठास लगती है। वह मिठास शुद्धात्मा को नहीं लगती, वह अहंकार को लगती है। अत: उसे तोड़ते रहना पड़ेगा। दोनों को अलग देखना चाहिए। अलग ही देखना पड़ेगा तभी हल आएगा।

- जय सच्चिदानंद

जहाँ कषाय वहाँ संसार

स्वरूपज्ञान के बाद कुछ भी करना नहीं होता है। इसलिए हमने कहा है कि कुछ करना मत। करती है दूसरी शक्ति और लोग यों ही सिर पर लेकर घूमते हैं, उसके कारण बल्कि जन्म बढ़ते हैं।

जहाँ कषाय हैं, वहाँ पर निरे परिग्रह के गट्ठर ही हैं। फिर वह गृहस्थी हो या त्यागी हो या हिमालय में पड़ा रहता हो! कषाय का अभाव है वहाँ परिग्रह का अभाव है। फिर भले ही वह राजमहल में रहता हो! मेरे पास कहाँ परिग्रह हैं? लोगों को लगता है कि दादा परिग्रही हैं। परिग्रही यानी सिर पर बोझा। हमें कभी भी बोझा नहीं लगता। शरीर का भी बोझा हमें नहीं लगता! फिर भी ये दादा खाते हैं, पीते हैं, विवाह में जाते हैं, स्मशान में जाते हैं!!!

वीतराग इतना ही देखते हैं कि कषाय का अभाव है या नहीं? फिर वे त्यागी की गद्दी नहीं देखते और गृहस्थी की गद्दी भी नहीं देखते! कषाय का अभाव है या नहीं इतना ही देखते हैं। या फिर कषायमंदता बरतती है या क्या? साधुओं में कुछ, दो-पाँच प्रतिशत भद्र स्वभावी, मंदकषायी होते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे समझदारी में मंद कहलाते हैं?

दादाश्री : समझदारी में नहीं, यों ही स्वाभाविक भद्र, फिर भी उन्हें भगवान ने कषाय रहित नहीं कहा। 'मैं हूँ', 'मैं हूँ' बोलते हैं तो वह कषाय है।

कृपालुदेव की पुस्तकें पढ़ने से मंदकषायी हुआ जा सकता है, परन्तु वह लोगों को समझ में नहीं आया। मंदकषायी किसे कहते हैं? कषाय उत्पन्न होते हैं उसका खुद को पता चलता है, परन्तु दूसरे किसीको पता नहीं चलने देते। कषायों को मोड़ा जा सके ऐसी दशा। कषाय संसार का स्वरूप हैं और अकषाय मोक्ष स्वरूप है। कषाय मूल है। यदि कषाय गए तो काम हो गया, नहीं तो साधु भी नहीं और संन्यासी भी नहीं। इसके बदले तो मंदकषायवाले गृहस्थी अच्छे।

अक्रम मार्ग से अकषायावस्था

जिसने कषायभाव को जीता, वह अरिहंत कहलाया! जहाँ 'मैं शुद्धात्मा हूँ' है, वहाँ कषायभाव नहीं रहते। जहाँ शुद्ध उपयोग हो, वहाँ पर कषायभाव नहीं रहते। जहाँ शुद्धात्मा है वहाँ कषाय नहीं हैं और जहाँ कषाय हैं, वहाँ शुद्धात्मा नहीं है। 'अक्रम ज्ञान' में कषाय होते ही नहीं। क्रमिक मार्ग में ऐसा है कि *अशाता* वेदनीय हो तो कर्म बँधे बगैर रहते ही नहीं। जब कि 'अक्रम' में उसमें कर्म नहीं बँधते परन्तु उतने समय तक वेदना भोगनी ही पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : यह 'अक्रम ज्ञान' की महत्ता है न?

दादाश्री : बहुत बड़ी महत्ता है! गज़ब का विकास है यह! नहीं तो एक अंश भी कषाय कम नहीं होते।

(परम पूज्य दादाश्री की ज्ञानवाणी में से संकलित)

आत्मज्ञानी पूज्यश्री दीपकभाई के सत्संग कार्यक्रम - टीवी/इन्टरनेट के माध्यम से लाइव

दिसम्बर सत्संग पारायण (आप्तवाणी-14 भाग-2)

26-27 दिसम्बर	सुबह 10 से 12	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
28 दिसम्बर से 1 जनवरी	सुबह 8 से 9	**वाचन**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
2-3 जनवरी	सुबह 10 से 12	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**

नोट : आप्तवाणी-14 भाग-2 गुजराती बुक के पेज नंबर 122 से वाचन होगा।

[उपरोक्त कार्यक्रमों में समय-संजोग के अधीन परिवर्तन हो सकता है।]

विशेष निवेदन

कोरोना वायरस महामारी की वर्तमान परिस्थिति में पूज्यश्री दीपकभाई की निश्रा में सार्वजनिक तौर पर सत्संग कार्यक्रम स्थगित है। भविष्य में महामारी की परिस्थिति सामान्य होने के बाद कार्यक्रम आयोजित होंगे। महात्माओं को सूचित किया जाता है कि अडालज में आयोजित पारायण शिविर महात्माओं की हाजिरी में मनाना संभव नहीं हो पाएगा। वर्तमान आयोजन अनुसार इन्टरनेट के माध्यम से ओनलाइन सत्संग तथा उत्सव मनाना जारी रहेगा।

'दादावाणी' के सदस्यों के लिए सूचना

हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में दादावाणी पत्रिका हर महिने 15वी तारीख को पोस्ट की जाती है। जिन महात्माओं को 'दादावाणी' पत्रिका विलंब से या तो अनियमित रूप से मिलती है, वे पूर्व प्राप्त पत्रिका के कवर पर अपना नाम, पता, पीनकोड आदि जाँच कर लें। यदि उसमें कोई भूल हो तो आपका ग्राहक नं, पूरा नाम-पता, पीनकोड के साथ लिखकर मोबाईल नं. 8155007500 पर SMS करें। आप अडालज त्रिमंदिर के पते पर पत्र से या dadavani@dadabhagwan.org पर इ-मेइल से भी सूचित कर सकते हैं। जिससे आपकी यहाँ दर्ज की गई जानकारी में सुधार किया जा सके। यदि आपको दादावाणी का अंक न मिले तो उपर दिए गए कोई भी माध्यम से हमें सूचित करें। यदि अंक स्टोक में होगा तो आपको फिर से भेजा जाएगा।

'दादावाणी' के वार्षिक/15 साल के सदस्यों के लिए सूचना

आपको आपकी दादावाणी पत्रिका की सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पता कैसे चलेगा? आपको मिली इस महीने की दादावाणी पत्रिका के कवर पर लगे हुए लेबल पर ग्राहक नं. के अंतिम छः अंक की जांच करें। DGFT555/**08-28** यानी आपकी सदस्यता अगस्त-2028 को समाप्त हो रही है। दादावाणी पत्रिका रिन्यु कराने के लिए पेज नं. 3 पर दर्शाये गए मूल्य अनुसार मनी आर्डर या डिमान्ड ड्राफ्ट (पेयेबल अहमदाबाद) त्रिमंदिर अडालज के पते पर भेजें। साथ ही अपना नाम, पूरा पता (पिनकोड के साथ), फोन-मोबाइल नंबर, इ-मेल आदि आवश्यक जानकारी दें।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई:** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा:** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** (079) 27540408, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली:** 9810098564, **बैंगलूर:** 9590979099, **कोलकता:** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

Parayan on Aptavani-14
(Part - 2)

Watch the Live Telecast On

अरिहंत

TV Channel...

For more details of program, please refer to page 34

Calendar 2021

Just as every year, purchase a calendar in the year 2021 with Dada's golden aphorisms and give it to your family and friends too.

You can purchase this calendar for just Rs 40

At the book store at Adalaj Trimandir, all other Trimandir, and on
store.dadabhagwan.org
(extra delivery charges apply)

This calendar has been released at the hands of Pujyashree.

Note: The 2021 calendars are only available in Gujarati, the soft copy of the Hindi calendar has been shared on **Akonnect**.

दिसम्बर 2020
वर्ष-16 अंक-2
अखंड क्रमांक - 182

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
LPWP Licence No. PMG/HQ/036/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

कड़वे व मीठे परिणामों के समय ज्ञानपूर्वक तप करना है

जो पिछला हिसाब चुकाना पड़ता है तो उसे चुकाते समय मिठास भी आती है और कड़वा भी आता है। मिठास आए, वहाँ भी तप करना है और कड़वा आए, वहाँ भी तप करना है। डिस्चार्ज कर्म कड़वा व मीठा फल दिए बगैर तो रहेगा ही नहीं न! कोई मुझे गाली दे, तो मुझे तुरंत पता चल जाता है कि यह मेरे कर्म का उदय है, वह निर्दोष है। इस ज्ञान से तप हुआ। इसमें 'खुद' को तप नहीं करना पड़ता। भीतर जो मन व बुद्धि तपते हैं, उन्हें समतापूर्वक 'देखते' रहना, वही तप है। उनमें तन्मयाकार नहीं होना है। पूरा जगत्, मन व बुद्धि के तपते ही खुद भी तप जाता है। तप करने से खुद की ज्ञानदशा की डिग्रियाँ बढ़ती हैं। तप अंतिम शुद्धता लाता है।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.